

Ramopakhyana parva

(Mahabharata van parva)


राम




MAHAKAALNYTIN
ALL RIGHTS RESERVED.2024 PHOTOGRAPHY AI
ORDER NOW

<u>Beginning :-</u>

भगवती पार्वतीसहित वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ७८-८० ॥

जयद्रथोऽपि मन्दात्मा स्वमेव भवनं ययौ।
पाण्डवाश्च वने तस्मिन् न्यवसन् काम्यके तथा ॥ ८१ ॥

तत्पश्चात् मन्दबुद्धि जयद्रथ भी अपने घर चला गया और पाण्डवगण उस काम्यकवनमें उसी प्रकार निवास करने लगे ॥ ८१ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि जयद्रथविमोक्षणपर्वणि द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत जयद्रथविमोक्षणपर्वमें दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ८१½ श्लोक हैं)

(रामोपाख्यानपर्व)

त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अपनी दुरवस्थासे दुखी हुए युधिष्ठिरका मार्कण्डेय मुनिसे प्रश्न करना

जनमेजय उवाच

एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम्।
अत ऊर्ध्वं नरव्याघ्राः किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—इस प्रकार द्रौपदीका अपहरण होनेपर महान् क्लेश उठानेके पश्चात् मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी पाण्डवोंने कौन-सा कार्य किया ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं कृष्णां मोक्षयित्वा विनिर्जित्य जयद्रथम्।
आसांचक्रे मुनिगणैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी बोले—जनमेजय ! इस प्रकार जयद्रथको जीत द्रौपदीको छुड़ाकर लेनेके पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर मुनिमण्डलीके साथ बैठे हुए थे ॥ २ ॥

तेषां मध्ये महर्षीणां शृण्वतामनुशोचताम्।
मार्कण्डेयमिदं वाक्यमब्रवीत् पाण्डुनन्दनः ॥ ३ ॥

महर्षिलोग भी पाण्डवोंपर आये हुए संकटको सुनते और उसके लिये बारंबार शोक प्रकट करते थे। उन्हींमेंसे मार्कण्डेयजीको लक्ष्य करके पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवन् देवर्षीणां त्वं ख्यातो भूतभविष्यवित्।
संशयं परिपृच्छामि छिन्धि मे हृदि संस्थितम् ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! आप भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंके ज्ञाता हैं। देवर्षियोंमें भी आपका नाम विख्यात है। अतः आपसे मैं अपने हृदयका एक संदेह पूछता हूँ, उसका निवारण कीजिये ॥ ४ ॥

द्रुपदस्य सुता ह्येषा वेदिमध्यात् समुत्थिता।
अयोनिजा महाभागा स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः ॥ ५ ॥

यह परम सौभाग्यशालिनी द्रुपदकुमारी यज्ञकी वेदीसे प्रकट हुई है; अतः अयोनिजा है (इसे गर्भवासका कष्ट नहीं सहन करना पड़ा है)। इसे महात्मा पाण्डुकी पुत्रवधू होनेका गौरव भी मिला है ॥ ५ ॥

मन्ये कालश्च भगवान् दैवं च विधिनिर्मितम्।
भवितव्यं च भूतानां यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥ ६ ॥

मेरी समझमें भगवान् काल, विधिनिर्मित दैव और समस्त प्राणियोंकी भवितव्यता अर्थात् उनके लिये होनेवाली घटना—ये तीनों ही प्रबल हैं; इनको कोई टाल नहीं सकता ॥ ६ ॥

इमां हि पत्नीमस्माकं धर्मज्ञां धर्मचारिणीम्।
संस्पृशेदीदृशो भावः शुचिं स्तैन्यमिवानृतम् ॥ ७ ॥

अन्यथा हमारी इस पत्नीको, जो धर्मको जाननेवाली तथा धर्मके पालनमें तत्पर रहनेवाली है, ऐसा भाव (अपहृत होनेका लाञ्छन) कैसे स्पर्श कर सकता था ? यह तो ठीक वैसा ही है, जैसे किसी शुद्ध आचार-विचारवाले मनुष्यपर झूठे ही चोरीका कलङ्क लग जाय ॥ ७ ॥

न हि पापं कृतं किंचित् कर्म वा निन्दितं क्वचित्।
द्रौपद्या ब्राह्मणेष्वेव धर्मः सुचरितो महान् ॥ ८ ॥

इसने कभी कोई पाप या निन्दित कर्म नहीं किया है। द्रौपदीने ब्राह्मणोंके प्रति सेवा-सत्कार आदिके रूपमें महान् धर्मका आचरण किया है ॥ ८ ॥

तां जहार बलाद् राजा मूढबुद्धिर्जयद्रथः।
तस्याः संहरणात् पापः शिरसः केशपातनम् ॥ ९ ॥
पराजयं च संग्रामे ससहायः समाप्तवान्।
प्रत्याहृता तथास्माभिर्हत्वा तत् सैन्धवं बलम् ॥ १० ॥

ऐसी स्त्रीका भी मूढबुद्धि पापी राजा जयद्रथने बलपूर्वक अपहरण किया। इस अपहरणके ही कारण उसका सिर मूँड़ा गया, वह अपने सहायकोंसहित युद्धमें पराजित हुआ तथा हमलोग सिन्धुदेशकी सेनाका संहार करके पुनः द्रौपदीको लौटा लाये हैं ॥ ९-१० ॥

तद् दारहरणं प्राप्तमस्माभिरवितर्कितम्।

ज्ञातिभिर्विप्रवासश्च मिथ्याव्यवसितैरियम् ॥ ११ ॥

इस प्रकार हमने जिसे कभी सोचा तक न था, वह अपनी पत्नीका अपहरणरूप अपमान हमें प्राप्त हुआ और मिथ्या व्यवसायमें लगे हुए बान्धवोंने हमें देशसे निर्वासित कर दिया है ॥ ११ ॥

अस्ति नूनं मया कश्चिदल्पभाग्यतरो नरः।
भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वोऽपि वा भवेत् ॥ १२ ॥

अतः मैं पूछता हूँ, क्या संसारमें मेरे-जैसा मन्दभाग्य मनुष्य कोई और भी है अथवा आपने पहले कभी मुझ-जैसे भाग्यहीनको कहीं देखा या सुना है ? ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि युधिष्ठिरप्रश्ने त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें युधिष्ठिरप्रश्नविषयक दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७३ ॥

चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीराम आदिका जन्म तथा कुबेरकी उत्पत्ति और उन्हें ऐश्वर्यकी प्राप्ति

मार्कण्डेय उवाच

प्राप्तमप्रतिमं दुःखं रामेण भरतर्षभ।
रक्षसा जानकी तस्य हृता भार्या बलीयसा ॥ १ ॥
आश्रमाद् राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।
मायामास्थाय तरसा हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—भरतश्रेष्ठ ! श्रीरामचन्द्रजीको भी वनवास तथा स्त्रीवियोगका अनुपम दुःख सहन करना पड़ा था। दुरात्मा राक्षसराज महाबली रावण अपना मायाजाल बिछाकर आश्रमसे उनकी पत्नी सीताको वेगपूर्वक हर ले गया था और अपने कार्यमें बाधा डालनेवाले गृध्रराज जटायुको उसने वहीं मार गिराया था ॥ १-२ ॥

प्रत्याजहार तां रामः सुग्रीवबलमाश्रितः।
बद्ध्वा सेतुं समुद्रस्य दग्ध्वा लङ्कां शितैः शरैः ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामचन्द्रजी भी सुग्रीवकी सेनाका सहारा ले समुद्रपर पुल बाँधकर लङ्कामें गये और अपने तीखे (आग्नेय आदि) बाणोंसे उसको भस्म करके वहाँसे सीताको वापस लाये ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन् रामः कुले जातः किंवीर्यः किम्पराक्रमः।
रावणः कस्य पुत्रो वा किं वैरं तस्य तेन ह ॥ ४ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! श्रीरामचन्द्रजी किस कुलमें प्रकट हुए थे ? उनका बल और पराक्रम कैसा था ? रावण किसका पुत्र था और उसका रामचन्द्रजीसे क्या वैर था ? ॥ ४ ॥

एतन्मे भगवन् सर्वं सम्यगाख्यातुमर्हसि।
श्रोतुमिच्छामि चरितं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ५ ॥

भगवन् ! ये सभी बातें मुझे अच्छी प्रकार बताइये। मैं अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीरामका चरित्र सुनना चाहता हूँ ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अजो नामाभवद् राजा महानिक्ष्वाकुवंशजः।
तस्य पुत्रो दशरथः शश्वत्स्वाध्यायवाञ्छुचिः ॥ ६ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! इक्ष्वाकुवंशमें अज नामसे प्रसिद्ध एक महान् राजा हो गये हैं। उनके पुत्र थे दशरथ, जो सदा स्वाध्यायमें संलग्न रहनेवाले और पवित्र थे ॥ ६ ॥

अभवंस्तस्य चत्वारः पुत्रा धर्मार्थकोविदाः।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्च महाबलः ॥ ७ ॥

उनके चार पुत्र हुए। वे सब-के-सब धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—राम, लक्ष्मण, महाबली भरत और शत्रुघ्न ॥ ७ ॥

रामस्य माता कौसल्या कैकेयी भरतस्य तु।
सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायाः परंतपौ ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माताका नाम कौसल्या था, भरतकी माता कैकेयी थी तथा शत्रुओंको संताप देनेवाले लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्राके पुत्र थे ॥ ८ ॥

विदेहराजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो।
यां चकार स्वयं त्वष्टा रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥ ९ ॥

राजन् ! विदेहदेशके राजा जनककी एक पुत्री थी, जिसका नाम था सीता। उसे स्वयं विधाताने ही भगवान् श्रीरामकी प्यारी रानी होनेके लिये रचा था ॥ ९ ॥

एतद् रामस्य ते जन्म सीतायाश्च प्रकीर्तितम्।
रावणस्यापि ते जन्म व्याख्यास्यामि जनेश्वर ॥ १० ॥

जनेश्वर ! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीराम और सीताके

जन्मका वृत्तान्त बताया है। अब रावणके भी जन्मका प्रसङ्ग सुनाऊँगा ॥ १० ॥

पितामहो रावणस्य साक्षाद् देवः प्रजापतिः ।
स्वयम्भूः सर्वलोकानां प्रभुः स्रष्टा महातपाः ॥ ११ ॥

सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, सबकी सृष्टि करनेवाले, प्रजापालक, महातपस्वी और स्वयम्भू साक्षात् भगवान् ब्रह्माजी ही रावणके पितामह थे ॥ ११ ॥

पुलस्त्यो नाम तस्यासीन्मानसो दयितः सुतः ।
तस्य वैश्रवणो नाम गवि पुत्रोऽभवत् प्रभुः ॥ १२ ॥

ब्रह्माजीके एक परम प्रिय मानसपुत्र पुलस्त्यजी थे। उनसे उनकी गौ नामकी पत्नीके गर्भसे वैश्रवण नामक शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥

पितरं स समुत्सृज्य पितामहमुपस्थितः ।
तस्य कोपात् पिता राजन् ससर्जात्मानमात्मना ॥ १३ ॥
स जज्ञे विश्रवा नाम तस्यात्मार्धेन वै द्विजः ।
प्रतीकाराय सक्रोधस्ततो वैश्रवणस्य वै ॥ १४ ॥

राजन्! वैश्रवण अपने पिताको छोड़कर पितामहकी सेवामें रहने लगे। इससे उनपर क्रोध करके पिता पुलस्त्यने स्वयं अपने आपको ही दूसरे रूपमें प्रकट कर लिया। पुलस्त्यके आधे शरीरसे जो दूसरा द्विज प्रकट हुआ, उसका नाम विश्रवा था। विश्रवा वैश्रवणसे बदला लेनेके लिये उनके ऊपर सदा कुपित रहा करते थे ॥ १३-१४ ॥

पितामहस्तु प्रीतात्मा ददौ वैश्रवणस्य ह ।
अमरत्वं धनेशत्वं लोकपालत्वमेव च ॥ १५ ॥

परंतु पितामह ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न थे; अतः उन्होंने वैश्रवणको अमरत्व प्रदान किया और धनका स्वामी तथा लोकपाल बना दिया ॥ १५ ॥

ईशानेन तथा सख्यं पुत्रं च नलकूबरम् ।
राजधानीनिवेशं च लङ्कां रक्षोगणान्विताम् ॥ १६ ॥

पितामहने उनकी महादेवजीसे मैत्री करायी, उन्हें नलकूबर नामक पुत्र दिया तथा राक्षसोंसे भरी हुई लंकाको उनकी राजधानी बनायी ॥ १६ ॥

विमानं पुष्पकं नाम कामगं च ददौ प्रभुः ।
यक्षाणामाधिपत्यं च राजराजत्वमेव च ॥ १७ ॥

साथ ही उन्हें इच्छानुसार विचरनेवाला पुष्पक नामका एक विमान दिया। इसके सिवा ब्रह्माजीने कुबेरको यक्षोंका स्वामी बना दिया और उन्हें 'राजराज' की पदवी प्रदान की ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रामरावणयोर्जन्मकथने चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें राम-रावणजन्मकथनविषयक दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७४ ॥

पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, खर और शूर्पणखाकी उत्पत्ति, तपस्या और वरप्राप्ति तथा कुबेरका रावणको शाप देना

मार्कण्डेय उवाच

पुलस्त्यस्य तु यः क्रोधादर्धदेहोऽभवन्मुनिः ।
विश्रवा नाम सक्रोधः स वैश्रवणमैक्षत ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! पुलस्त्यके क्रोधसे उनके आधे शरीरसे जो 'विश्रवा' नामक मुनि प्रकट हुए थे, वे कुबेरको कुपित दृष्टिसे देखने लगे ॥ १ ॥

बुबुधे तं तु सक्रोधं पितरं राक्षसेश्वरः ।
कुबेरस्तत्प्रसादार्थं यतते स सदा नृप ॥ २ ॥

युधिष्ठिर! राक्षसोंके स्वामी कुबेरको जब यह बात मालूम हो गयी कि मेरे पिता मुझपर रुष्ट रहते हैं, तब वे उन्हें प्रसन्न रखनेका यत्न करने लगे ॥ २ ॥

स राजराजो लङ्कायां न्यवसन्नरवाहनः ।
राक्षसीः प्रददौ तिस्रः पितुर्वै परिचारिकाः ॥ ३ ॥

राजराज कुबेर स्वयं लङ्कामें ही रहते थे। वे मनुष्योंद्वारा ढोई जानेवाली पालकी आदिकी सवारीपर चलते थे, इसलिये नरवाहन कहलाते थे। उन्होंने अपने पिता विश्रवाकी सेवाके लिये तीन राक्षसकन्याओंको परिचारिकाओंके रूपमें नियुक्त कर दिया था ॥ ३ ॥

ताः सदा तं महात्मानं संतोषयितुमुद्यताः ।
ऋषिं भरतशार्दूल नृत्यगीतविशारदाः ॥ ४ ॥

भरतश्रेष्ठ! वे तीनों ही नाचने और गानेकी कलामें निपुण थीं तथा सदा ही उन महात्मा महर्षिको संतुष्ट रखनेके लिये सचेष्ट रहती थीं ॥ ४ ॥

पुष्पोत्कटा च राका च मालिनी च विशाम्पते ।
अन्योन्यस्पर्धया राजन् श्रेयस्कामाः सुमध्यमाः ॥ ५ ॥

महाराज! उनके नाम थे—पुष्पोत्कटा, राका तथा मालिनी। वे तीनों सुन्दरियाँ अपना भला चाहती थीं।

इसलिये एक दूसरीसे स्पर्धा रखकर मुनिकी सेवा करती थीं ॥

स तासां भगवांस्तुष्टो महात्मा प्रददौ वरान् ।
लोकपालोपमान् पुत्रानेकैकस्या यथेप्सितान् ॥ ६ ॥

वे ऐश्वर्यशाली महात्मा उनकी सेवाओंसे प्रसन्न हो गये और उनमेंसे प्रत्येकको उनकी इच्छाके अनुसार लोकपालोंके समान पराक्रमी पुत्र होनेका वरदान दिया ॥ ६ ॥

पुष्पोत्कटायां जज्ञाते द्वौ पुत्रौ राक्षसेश्वरौ ।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ बलेनाप्रतिमौ भुवि ॥ ७ ॥

पुष्पोत्कटाके दो पुत्र हुए—रावण और कुम्भकर्ण । ये दोनों ही राक्षसोंके अधिपति थे । भूमण्डलमें इनके समान बलवान् दूसरा कोई नहीं था ॥ ७ ॥

मालिनी जनयामास पुत्रमेकं विभीषणम् ।
राकायां मिथुनं जज्ञे खरः शूर्पणखा तथा ॥ ८ ॥

मालिनीने एक ही पुत्र विभीषणको जन्म दिया । राकाके गर्भसे एक पुत्र और एक पुत्री हुई । पुत्रका नाम खर था और पुत्रीका शूर्पणखा ॥ ८ ॥

विभीषणस्तु रूपेण सर्वेभ्योऽभ्यधिकोऽभवत् ।
स बभूव महाभागो धर्मगोप्ता क्रियारतिः ॥ ९ ॥

इन सब बालकोंमें विभीषण ही सबसे अधिक रूपवान्, सौभाग्यशाली, धर्मरक्षक तथा कर्तव्यपरायण थे ॥ ९ ॥

दशग्रीवस्तु सर्वेषां श्रेष्ठो राक्षसपुङ्गवः ।
महोत्साहो महावीर्यो महासत्त्वपराक्रमः ॥ १० ॥

रावणके दस मस्तक थे । वही सबमें ज्येष्ठ तथा राक्षसोंका स्वामी था । उत्साह, बल, धैर्य और पराक्रममें भी वह महान् था ॥ १० ॥

कुम्भकर्णो बलेनासीत् सर्वेभ्योऽभ्यधिको युधि ।
मायावी रणशौण्डश्च रौद्रश्च रजनीचरः ॥ ११ ॥

कुम्भकर्ण शारीरिक बलमें सबसे बढ़ा-चढ़ा था । युद्धमें भी वह सबसे बढ़कर था । मायावी और रणकुशल तो था ही, वह निशाचर बड़ा भयंकर भी था ॥ ११ ॥

खरो धनुषि विक्रान्तो ब्रह्मद्विट् पिशिताशनः ।
सिद्धविघ्नकरी चापि रौद्री शूर्पणखा तथा ॥ १२ ॥

खर धनुर्विद्यामें विशेष पराक्रमी था । वह ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाला तथा मांसाहारी था । शूर्पणखाकी आकृति बड़ी भयानक थी । वह सिद्ध ऋषि-मुनियोंकी तपस्यामें विघ्न डाला करती थी ॥ १२ ॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।
ऊषुः पित्रा सह रता गन्धमादनपर्वते ॥ १३ ॥

वे सभी बालक वेदवेत्ता, शूरवीर तथा ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले थे और अपने पिताके साथ गन्धमादन पर्वतपर सुखपूर्वक रहते थे ॥ १३ ॥

ततो वैश्रवणं तत्र ददृशुर्नरवाहनम् ।
पित्रा सार्धं समासीनमृद्ध्या परमया युतम् ॥ १४ ॥

एक दिन नरवाहन कुबेर अपने महान् ऐश्वर्यसे युक्त होकर पिताके साथ बैठे थे । उसी अवसरमें रावण आदिने उनको देखा ॥ १४ ॥

जातामर्षास्ततस्ते तु तपसे धृतनिश्चयाः ।
ब्रह्माणं तोषयामासुर्घोरेण तपसा तदा ॥ १५ ॥

उनका वैभव देखकर इन बालकोंके हृदयमें डाह पैदा हो गयी । अतः उन्होंने मन-ही-मन तपस्या करनेका निश्चय किया और घोर तपस्याके द्वारा उन्होंने ब्रह्माजीको संतुष्ट कर लिया ॥ १५ ॥

अतिष्ठदेकपादेन सहस्रं परिवत्सरान् ।
वायुभक्षो दशग्रीवः पञ्चाग्निः सुसमाहितः ॥ १६ ॥

रावण सहस्रों वर्षोंतक एक पैरसे खड़ा रहा । वह चित्तको एकाग्र रखकर पञ्चाग्निसेवन करता और वायु पीकर रहता था ॥ १६ ॥

अधःशायी कुम्भकर्णो यताहारो यतव्रतः ।
विभीषणः शीर्णपर्णमेकमभ्यवहारयत् ॥ १७ ॥

कुम्भकर्णने भी आहारका संयम किया । वह भूमिपर सोता और कठोर नियमोंका पालन करता था । विभीषण केवल एक सूखा पत्ता खाकर रहते थे ॥ १७ ॥

उपवासरतिर्धीमान् सदा जप्यपरायणः ।
तमेव कालमातिष्ठत् तीव्रं तप उदारधीः ॥ १८ ॥

उनका भी उपवासमें ही प्रेम था । बुद्धिमान् एवं उदारबुद्धि विभीषण सदा जप किया करते थे । उन्होंने भी उतने समयतक तीव्र तपस्या की ॥ १८ ॥

खरः शूर्पणखा चैव तेषां वै तप्यतां तपः ।
परिचर्यां च रक्षां च चक्रतुर्हृष्टमानसौ ॥ १९ ॥

खर और शूर्पणखा ये दोनों प्रसन्न मनसे तपस्यामें लगे हुए अपने भाइयोंकी परिचर्या तथा रक्षा करते थे ॥ १९ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्छित्त्वा दशाननः ।
जुहोत्यग्नौ दुराधर्षस्तेनातुष्यज्जगत्प्रभुः ॥ २० ॥

एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर दुर्धर्ष दशाननने अपना मस्तक काटकर अग्निमें उसकी आहुति दे दी । उसके इस अद्भुत कर्मसे लोकेश्वर ब्रह्माजी बहुत संतुष्ट हुए ॥ २० ॥

ततो ब्रह्मा स्वयं गत्वा तपसस्तान् न्यवारयत् ।
प्रलोभ्य वरदानेन सर्वानेव पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीने स्वयं आकर उन सबको तपस्या

करनेसे रोका और प्रत्येकको पृथक्-पृथक् वरदानका लोभ देते हुए कहा ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच

प्रीतोऽस्मि वो निवर्तध्वं वरान् वृणुत पुत्रकाः।
यद् यदिष्टमृते त्वेकममरत्वं तथास्तु तत् ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—पुत्रो! मैं तुम सबपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो और तपस्यासे निवृत्त हो जाओ। केवल अमरत्वको छोड़कर जिसकी जो-जो इच्छा हो, उसके अनुसार वह वर माँगे। उसका वह मनोरथ पूर्ण होगा ॥ २२ ॥

यद् यदग्नौ हुतं सर्वं शिरस्ते महदीप्सया।
तथैव तानि ते देहे भविष्यन्ति यथेप्सया ॥ २३ ॥

(तत्पश्चात् उन्होंने रावणकी ओर लक्ष्य करके कहा—) तुमने महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करनेकी इच्छासे अपने जिन-जिन मस्तकोंकी अग्निमें आहुति दी है, वे सब-के-सब पूर्ववत् तुम्हारे शरीरमें इच्छानुसार जुड़ जायँगे ॥ २३ ॥

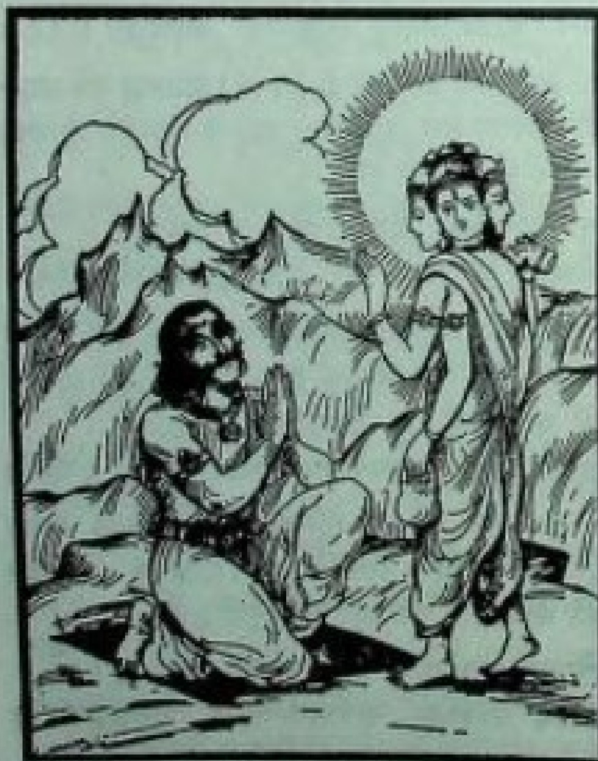
वैरूप्यं च न ते देहे कामरूपधरस्तथा।
भविष्यसि रणेऽरीणां विजेता न च संशयः ॥ २४ ॥

तुम्हारे शरीरमें किसी प्रकारकी कुरूपता नहीं होगी, तुम इच्छानुसार रूप धारण कर सकोगे तथा युद्धमें शत्रुओंपर विजयी होओगे, इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥

रावण उवाच

गन्धर्वदेवासुरतो यक्षराक्षसतस्तथा।
सर्पकिन्नरभूतेभ्यो न मे भूयात् पराभवः ॥ २५ ॥

रावण बोला—भगवन्! गन्धर्व, देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्नर तथा भूतोंसे कभी मेरी पराजय न हो ॥



ब्रह्मोवाच

य एते कीर्तिताः सर्वे न तेभ्योऽस्ति भयं तव।
ऋते मनुष्याद् भद्रं ते तथा तद् विहितं मया ॥ २६ ॥

ब्रह्माजीने कहा—तुमने जिन लोगोंका नाम लिया है, इनमेंसे किसीसे भी तुम्हें भय नहीं होगा। केवल मनुष्यको छोड़कर तुम सबसे निर्भय रहो। तुम्हारा भला हो। तुम्हारे लिये मनुष्यसे होनेवाले भयका विधान मैंने ही किया है ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्तो दशग्रीवस्तुष्टः समभवत् तदा।
अवमेने हि दुर्बुद्धिर्मनुष्यान् पुरुषादकः ॥ २७ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर दसमुख रावण बहुत प्रसन्न हुआ। वह दुर्बुद्धि नरभक्षी राक्षस मनुष्योंकी अवहेलना करता था ॥ २७ ॥

कुम्भकर्णमथोवाच तथैव प्रपितामहः।
स वव्रे महतीं निद्रां तमसा ग्रस्तचेतनः ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने कुम्भकर्णसे वर माँगनेको कहा। परंतु उसकी बुद्धि तमोगुणसे ग्रस्त थी; अतः उसने अधिक कालतक नींद लेनेका वर माँगा ॥ २८ ॥

तथा भविष्यतीत्युक्त्वा विभीषणमुवाच ह।
वरं वृणीष्व पुत्र त्वं प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः ॥ २९ ॥

उसे 'ऐसा ही होगा' यों कहकर ब्रह्माजी विभीषणके पास गये और इस प्रकार बोले—'बेटा! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तुम भी वर माँगो।' ब्रह्माजीने यह बात बारंबार दुहरायी ॥ २९ ॥

विभीषण उवाच

परमापद्गतस्यापि नाधर्मे मे मतिर्भवेत्।
अशिक्षितं च भगवन् ब्रह्मास्त्रं प्रतिभातु मे ॥ ३० ॥

विभीषण बोले—भगवन्! बहुत बड़ा संकट आनेपर भी मेरे मनमें कभी पापका विचार न उठे तथा बिना सीखे ही मेरे हृदयमें ब्रह्मास्त्रके प्रयोग और उपसंहारकी विधि स्फुरित हो जाय ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच

यस्माद् राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रकर्शन।
नाधर्मे धीयते बुद्धिरमरत्वं ददानि ते ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजीने कहा—शत्रुनाशन! राक्षसयोनिमें जन्म लेकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्ममें नहीं लगती है; इसलिये (तुम्हारे माँगे हुए वरके अतिरिक्त) मैं तुम्हें अमरत्व भी देता हूँ।

मार्कण्डेय उवाच

राक्षसस्तु वरं लब्ध्वा दशग्रीवो विशाम्पते।
लङ्कायाश्च्यावयामास युधि जित्वा धनेश्वरम् ॥ ३२ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! राक्षस दशाननने वर प्राप्त कर लेनेपर सबसे पहले अपने भाई कुबेरको युद्धमें परास्त किया और उन्हें लङ्काके राज्यसे बहिष्कृत कर दिया॥

हित्वा स भगवाँल्लङ्कामाविशद् गन्धमादनम्।
गन्धर्वयक्षानुगतो रक्षःकिम्पुरुषैः सह॥ ३३॥

भगवान् कुबेर लङ्का छोड़कर गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा किम्पुरुषोंके साथ गन्धमादन पर्वतपर आकर रहने लगे॥ ३३॥

विमानं पुष्पकं तस्य जहाराक्रम्य रावणः।
शशाप तं वैश्रवणो न त्वामेतद् वहिष्यति॥ ३४॥
यस्तु त्वां समरे हन्ता तमेवैतद् वहिष्यति।
अवमन्य गुरुं मां च क्षिप्रं त्वं न भविष्यसि॥ ३५॥

रावणने आक्रमण करके उनका पुष्पक विमान भी छीन लिया। तब कुबेरने कुपित होकर उसे शाप दिया—'अरे! यह विमान तेरी सवारीमें नहीं आ सकेगा। जो युद्धमें तुझे मार डालेगा, उसीका यह वाहन होगा। मैं तेरा बड़ा भाई होनेके कारण मान्य था, परंतु तूने मेरा अपमान किया है। इससे बहुत शीघ्र तेरा नाश हो जायगा'॥ ३४-३५॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा सतां मार्गमनुस्मरन्।
अन्वगच्छन्महाराज श्रिया परमया युतः॥ ३६॥

महाराज! विभीषण धर्मात्मा थे। उन्होंने सत्पुरुषोंके मार्गका ध्यान रखकर सदा अपने भाई कुबेरका अनुसरण किया; अतः वे उत्तम लक्ष्मीसे सम्पन्न हुए॥ ३६॥

तस्मै स भगवांस्तुष्टो भ्राता भ्रात्रे धनेश्वरः।
सैनापत्यं ददौ धीमान् यक्षराक्षससेनयोः॥ ३७॥

बड़े भाई बुद्धिमान् भगवान् कुबेरने संतुष्ट होकर छोटे भाई विभीषणको यक्ष तथा राक्षसोंकी सेनाका सेनापति बना दिया॥ ३७॥

राक्षसाः पुरुषादाश्च पिशाचाश्च महाबलाः।
सर्वे समेत्य राजानमभ्यषिञ्चन् दशाननम्॥ ३८॥

नरभक्षी राक्षस तथा महाबली पिशाच—सबने मिलकर दशमुख रावणको राक्षसराजके पदपर अभिषिक्त किया॥ ३८॥

दशग्रीवश्च दैत्यानां देवानां च बलोत्कटः।
आक्रम्य रत्नान्यहरत् कामरूपी विहङ्गमः॥ ३९॥

बलोन्मत्त रावण इच्छानुसार रूप धारण करने और आकाशमें भी चलनेमें समर्थ था। उसने दैत्यों और देवताओंपर आक्रमण करके उनके पास जो रत्न या रत्नभूत वस्तुएँ थीं, उन सबका अपहरण कर लिया॥ ३९॥

रावयामास लोकान् यत् तस्माद् रावण उच्यते।
दशग्रीवः कामबलो देवानां भयमादधत्॥ ४०॥

उसने सम्पूर्ण लोकोंको रुला दिया था; इसलिये वह रावण कहलाता है। दशाननका बल उसकी इच्छानुसार बढ़ जाता था; अतः वह सदा देवताओंको भयभीत किये रहता था॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रावणादिवरप्राप्तौ पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें रावण आदिको वरप्राप्तिविषयक दो सौ पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७५॥

षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाकर रावणके अत्याचारसे बचानेके लिये प्रार्थना करना तथा ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओंका रीछ और वानरयोनिमें संतान उत्पन्न करना एवं दुन्दुभी गन्धर्वीका मन्थरा बनकर आना

मार्कण्डेय उवाच

ततो ब्रह्मर्षयः सर्वे सिद्धा देवर्षयस्तथा।
हव्यवाहं पुरस्कृत्य ब्रह्माणं शरणं गताः॥ १॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् रावणसे कष्ट पाये हुए ब्रह्मर्षि, देवर्षि तथा सिद्धगण अग्निदेवको आगे करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥ १॥

अग्निरुवाच

योऽसौ विश्रवसः पुत्रो दशग्रीवो महाबलः ।
अवध्यो वरदानेन कृतो भगवता पुरा ॥ २ ॥
स बाधते प्रजाः सर्वा विप्रकारैर्महाबलः ।
ततो नस्त्रातु भगवन् नान्यस्त्राता हि विद्यते ॥ ३ ॥

अग्निदेव बोले—भगवन् ! आपने पहले जो वरदान देकर विश्रवाके पुत्र महाबली रावणको अवध्य कर दिया है, वह महाबलवान् राक्षस अब संसारकी समस्त प्रजाको अनेक प्रकारसे सता रहा है; अतः आप ही उसके भयसे हमारी रक्षा कीजिये। आपके सिवा हमारा दूसरा कोई रक्षक नहीं है ॥ २-३ ॥

ब्रह्मोवाच

न स देवासुरैः शक्यो युद्धे जेतुं विभावसो ।
विहितं तत्र यत् कार्यमभितस्तस्य निग्रहः ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीने कहा—अग्ने ! देवता या असुर उसे युद्धमें नहीं जीत सकते। उसके विनाशके लिये जो आवश्यक कार्य था, वह कर दिया गया। अब सब प्रकारसे उस दुष्टका दमन हो जायगा ॥ ४ ॥

तदर्थमवतीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः ।
विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः स तत् कर्म करिष्यति ॥ ५ ॥

उस राक्षसके निग्रहके लिये मैंने चतुर्भुज भगवान् विष्णुसे अनुरोध किया था। मेरी प्रार्थनासे वे भगवान् भूतलपर अवतार ले चुके हैं। वे योद्धाओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः वे ही रावणके दमनका कार्य करेंगे ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पितामहस्ततस्तेषां संनिधौ शक्रमब्रवीत् ।
सर्वैर्देवगणैः सार्धं सम्भव त्वं महीतले ॥ ६ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर ब्रह्माजीने उन देवताओंके समीप ही इन्द्रसे कहा—'तुम समस्त देवताओंके साथ भूतलपर जन्म ग्रहण करो ॥ ६ ॥

विष्णोः सहायानृक्षीषु वानरीषु च सर्वशः ।
जनयध्वं सुतान् वीरान् कामरूपबलान्वितान् ॥ ७ ॥

'वहाँ रीछों और वानरोंकी स्त्रियोंसे ऐसे वीर पुत्रको उत्पन्न करो, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, बलवान् तथा भूतलपर अवतीर्ण हुए भगवान् विष्णुके योग्य सहायक हों' ॥ ७ ॥

ततो भागानुभागेन देवगन्धर्वपन्नगाः ।
अवतर्तुं महीं सर्वे मन्त्रयामासुरञ्जसा ॥ ८ ॥

तदनन्तर देवता, गन्धर्व और नाग अपने-अपने अंश एवं अंशांशसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके लिये परस्पर परामर्श करने लगे ॥ ८ ॥

तेषां समक्षं गन्धर्वीं दुन्दुभीं नाम नामतः ।
शशास वरदो देवो गच्छ कार्यार्थसिद्धये ॥ ९ ॥

फिर वरदायक देवता ब्रह्माजीने उन सबके सामने ही दुन्दुभी नामवाली गन्धर्वीको आज्ञा दी कि 'तुम भी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये भूतलपर जाओ' ॥ ९ ॥

पितामहवचः श्रुत्वा गन्धर्वी दुन्दुभी ततः ।
मन्थरा मानुषे लोके कुब्जा समभवत् तदा ॥ १० ॥

पितामहकी बात सुनकर गन्धर्वी दुन्दुभी मनुष्यलोकमें आकर मन्थरा नामसे प्रसिद्ध कुबड़ी दासी हुई ॥ १० ॥

शक्रप्रभृतयश्चैव सर्वे ते सुरसत्तमाः ।
वानरर्क्षवरस्त्रीषु जनयामासुरात्मजान् ॥ ११ ॥
तेऽन्ववर्तन् पितॄन् सर्वे यशसा च बलेन च ।
भेत्तारो गिरिशृङ्गाणां शालतालशिलायुधाः ॥ १२ ॥

इन्द्र आदि समस्त श्रेष्ठ देवता भी वानरों तथा रीछोंकी उत्तम स्त्रियोंसे संतान उत्पन्न करने लगे। वे सब वानर और रीछ यश तथा बलमें अपने पिता देवताओंके समान ही हुए। वे पर्वतोंके शिखर तोड़ डालनेकी शक्ति रखते थे एवं शाल (साखू) और ताल (ताड़) के वृक्ष तथा पत्थरोंकी चट्टानें ही उनके आयुध थे ॥ ११-१२ ॥

वज्रसंहननाः सर्वे सर्वे चौघबलास्तथा ।
कामवीर्यधराश्चैव सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १३ ॥

उनका शरीर वज्रके समान दुर्भेद्य और सुदृढ़ था। वे सभी राशि-राशि बलके आश्रय थे। उनका बल और पराक्रम इच्छाके अनुसार प्रकट होता था। वे सबके सब युद्ध करनेकी कलामें दक्ष थे ॥ १३ ॥

नागायुतसमप्राणा वायुवेगसमा जवे ।
यत्रेच्छकनिवासाश्च केचिदत्र वनौकसः ॥ १४ ॥

उनके शरीरमें दस हजार हाथियोंके समान बल था। तेज चलनेमें वे वायुके वेगको लजा देते थे। उनका कोई घर-बार नहीं था; जहाँ इच्छा होती, वहीं रह जाते थे। उनमेंसे कुछ लोग केवल वनोंमें ही रहते थे ॥ १४ ॥

एवं विधाय तत् सर्वं भगवाँल्लोकभावनः ।
मन्थरां बोधयामास यद् यत् कार्यं यथा यथा ॥ १५ ॥

इस प्रकार सारी व्यवस्था करके लोकस्रष्टा भगवान् ब्रह्माने मन्थरा बनी हुई दुन्दुभीको जो-जो काम जैसे-जैसे करना था, वह सब समझा दिया ॥ १५ ॥

सा तद्वचः समाज्ञाय तथा चक्रे मनोजवा ।
इतश्चेतश्च गच्छन्ती वैरसन्धुक्षणे रता ॥ १६ ॥

वह मनके समान वेगसे चलनेवाली थी। उसने ब्रह्माजी-की बातको अच्छी तरह समझकर उनके अनुसार ही कार्य किया। वह इधर-उधर घूम-फिरकर वैरकी आग प्रज्वलित करनेमें लग गयी ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि वानराद्युत्पत्तौ षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें वानर आदिकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७६ ॥

सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी, रामवनगमन, भरतकी चित्रकूटयात्रा, रामके द्वारा खर-दूषण आदि राक्षसोंका नाश तथा रावणका मारीचके पास जाना

युधिष्ठिर उवाच

उक्तं भगवता जन्म रामादीनां पृथक् पृथक्।
प्रस्थानकारणं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥ १ ॥
कथं दाशरथी वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
सम्प्रस्थितौ वने ब्रह्मन् मैथिली च यशस्विनी ॥ २ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! आपने श्रीरामचन्द्रजी आदि सभी भाइयोंके जन्मकी कथा तो पृथक्-पृथक् सुना दी, अब मैं उनके वनवासका कारण सुनना चाहता हूँ; उसे कहिये। दशरथजीके वीर पुत्र दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण तथा मिथिलेशकुमारी यशस्विनी सीताको वनमें क्यों जाना पड़ा? ॥ १-२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

जातपुत्रो दशरथः प्रीतिमानभवन्नृप।
क्रियारतिर्धर्मरतः सततं वृद्धसेविता ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! अपने पुत्रोंके जन्मसे महाराज दशरथको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सदा सत्कर्मोंमें तत्पर रहनेवाले, धर्मपरायण तथा बड़े-बूढ़ोंके सेवक थे ॥ ३ ॥

क्रमेण चास्य ते पुत्रा व्यवर्धन्त महौजसः।
वेदेषु सरहस्येषु धनुर्वेदेषु पारगाः ॥ ४ ॥
चरितब्रह्मचर्यास्ते कृतदाराश्च पार्थिव।
यदा तदा दशरथः प्रीतिमानभवत् सुखी ॥ ५ ॥

राजाके वे महातेजस्वी पुत्र क्रमशः बढ़ने लगे। उन्होंने (उपनयनके पश्चात्) विधिवत् ब्रह्मचर्यका पालन किया और वेदों तथा रहस्यसहित धनुर्वेदके वे पारंगत विद्वान् हुए। समयानुसार जब उनका विवाह हो गया, तब राजा दशरथ बड़े प्रसन्न तथा सुखी हुए ॥ ४-५ ॥

ज्येष्ठो रामोऽभवत् तेषां रमयामास हि प्रजाः।
मनोहरतया धीमान् पितुर्हृदयनन्दनः ॥ ६ ॥

चारों पुत्रोंमें बुद्धिमान् श्रीराम सबसे बड़े थे। वे अपने मनोहर रूप एवं सुन्दर स्वभावसे समस्त प्रजाको आनन्दित करते थे—सबका मन उन्हींमें रमता था। इसके सिवा वे पिताके मनमें भी आनन्द बढ़ानेवाले थे ॥ ६ ॥

ततः स राजा मतिमान् मत्वाऽऽत्मानं वयोऽधिकम्।
मन्त्रयामास सचिवैर्धर्मज्ञैश्च पुरोहितैः ॥ ७ ॥
अभिषेकाय रामस्य यौवराज्येन भारत।

युधिष्ठिर! राजा दशरथ बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने यह सोचकर कि अब मेरी अवस्था बहुत अधिक हो गयी; अतः श्रीरामको युवराजपदपर अभिषिक्त कर देना चाहिये; इस विषयमें अपने मन्त्री और धर्मज्ञ पुरोहितोंसे सलाह की ॥ ७½ ॥

प्राप्तकालं च ते सर्वे मेनिरे मन्त्रिसत्तमाः ॥ ८ ॥
लोहिताक्षं महाबाहुं मत्तमातङ्गगामिनम्।
कम्बुग्रीवं महोरस्कं नीलकुञ्चितमूर्धजम् ॥ ९ ॥
दीप्यमानं श्रिया वीरं शक्रादनवरं रणे।
पारगं सर्वधर्माणां बृहस्पतिसमं मतौ ॥ १० ॥
सर्वानुरक्तप्रकृतिं सर्वविद्याविशारदम्।
जितेन्द्रियममित्राणामपि दृष्टिमनोहरम् ॥ ११ ॥
नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम्।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥ १२ ॥
पुत्रं राजा दशरथः कौसल्यानन्दवर्धनम्।
संदृश्य परमां प्रीतिमगच्छत् कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

उन सभी श्रेष्ठ मन्त्रियोंने राजाके इस समयोचित प्रस्ताव-का अनुमोदन किया। श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर नेत्र कुछ-कुछ लाल थे और भुजाएँ बड़ी एवं घुटनों तक लंबी थीं। वे मतवाले हाथीके समान मस्तानी चालसे चलते थे। उनकी ग्रीवा शङ्खके समान सुन्दर थी, उनकी छाती चौड़ी थी और उनके सिरपर काले-काले घुँघराले बाल थे। उनकी देह दिव्य दीप्तिसे दमकती रहती थी। युद्धमें उनका पराक्रम देवराज इन्द्रसे कम नहीं था। वे समस्त धर्मोंके पारंगत विद्वान् और बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। सम्पूर्ण प्रजाका उनमें अनुराग था। वे सभी विद्याओंमें प्रवीण तथा जितेन्द्रिय थे। उनका अद्भुत रूप देखकर शत्रुओंके भी नेत्र और मन लुभा जाते थे। वे दुष्टोंका दमन करनेमें समर्थ, साधुओं-के संरक्षक, धर्मात्मा, धैर्यवान्, दुर्धर्ष, विजयी तथा किसीसे भी परास्त न होनेवाले थे। कुरुनन्दन! कौसल्याका आनन्द

बढ़ानेवाले अपने पुत्र श्रीरामको देख-देखकर राजा दशरथको बड़ी प्रसन्नता होती थी ॥ ८-१३ ॥

चिन्तयंश्च महातेजा गुणान् रामस्य वीर्यवान् ।
अभ्यभाषत भद्रं ते प्रीयमाणः पुरोहितम् ॥ १४ ॥
अद्य पुष्यो निशि ब्रह्मन् पुण्यं योगमुपैष्यति ।
सम्भाराः सम्भ्रियन्तां मे रामश्चोपनिमन्त्र्यताम् ॥ १५ ॥

राजन् ! तुम्हारा भला हो। महातेजस्वी तथा परम पराक्रमी राजा दशरथ श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका स्मरण करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ पुरोहितसे बोले—'ब्रह्मन् ! आज पुष्य नक्षत्र है। रातमें इसे परम पवित्र योग प्राप्त होनेवाला है। आप राज्याभिषेककी सामग्री तैयार कीजिये और श्रीरामको भी इसकी सूचना दे दीजिये' ॥ १४-१५ ॥

इति तद् राजवचनं प्रतिश्रुत्याथ मन्थरा ।
कैकेयीमभिगम्येदं काले वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥

राजाकी यह बात मन्थराने भी सुन ली। वह ठीक समयपर कैकेयीके पास जाकर यों बोली— ॥ १६ ॥



अद्य कैकेयि दौर्भाग्यं राज्ञा ते ख्यापितं महत् ।
आशीविषस्त्वां संक्रुद्धश्चण्डो दशतु दुर्भगे ॥ १७ ॥

'केकयनन्दिनि ! आज राजाने तुम्हारे लिये महान् दुर्भाग्यकी घोषणा की है। खोटे भाग्यवाली रानी ! इससे अच्छा तो यह होता कि तुम्हें क्रोधमें भरा हुआ प्रचण्ड विषधर सर्प डँस लेता ॥ १७ ॥

सुभगा खलु कौसल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते ।
कुतो हि तव सौभाग्यं यस्याः पुत्रो न राज्यभाक् ॥ १८ ॥

'रानी कौसल्याका भाग्य अवश्य अच्छा है, जिनके पुत्रका राज्याभिषेक होगा। तुम्हारा ऐसा सौभाग्य कहाँ ? जिसका पुत्र राज्यका अधिकारी ही नहीं है' ॥ १८ ॥

सा तद्वचनमाज्ञाय सर्वाभरणभूषिता ।
देवी विलग्नमध्येव बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ १९ ॥
विविक्ते पतिमासाद्य हसन्तीव शुचिस्मिता ।
प्रणयं व्यञ्जयन्तीव मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

मन्थराकी यह बात सुनकर सूक्ष्म कटिप्रदेशवाली देवी कैकेयी समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो परम सुन्दर रूप बनाकर एकान्तमें अपने पतिके पास गयी। उसकी मुसकराहटसे उसके शुद्ध भावकी सूचना मिल रही थी। वह हँसती और प्रेम जताती हुई-सी मधुर वाणीमें बोली— ॥ १९-२० ॥

सत्यप्रतिज्ञ यन्मे त्वं काममेकं निसृष्टवान् ।
उपाकुरुष्व तद् राजंस्तस्मान्मुच्यस्व संकटात् ॥ २१ ॥

'सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले महाराज ! आपने पहले जो 'तेरा मनोरथ सफल करूँगा' ऐसा वर दिया था, उसे आज पूर्ण कीजिये और उस संकटसे मुक्त हो जाइये' ॥ २१ ॥

राजोवाच

वरं ददानि ते हन्त तद् गृहाण यदिच्छसि ।
अवध्यो वध्यतां कोऽद्य वध्यः कोऽद्य विमुच्यताम् ॥ २२ ॥
धनं ददानि कस्याद्य ह्रियतां कस्य वा पुनः ।
ब्राह्मणस्वादिहान्यत्र यत् किंचिद् वित्तमस्ति मे ॥ २३ ॥

राजाने कहा—प्रिये ! यह तो बड़े हर्षकी बात है। मैं अभी तुम्हें वर देता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, ले लो। आज मैं तुम्हारे कहनेसे किस कैद करनेके अयोग्यको कैद कर दूँ अथवा किस कैद करनेयोग्यको मुक्त कर दूँ ? किसे धन दे दूँ अथवा किसका सर्वस्व हरण कर लूँ ? ब्राह्मणधनके अतिरिक्त यहाँ अथवा अन्यत्र जो कुछ भी मेरे पास धन है, उसपर तुम्हारा अधिकार है ॥ २२-२३ ॥

पृथिव्यां राजराजोऽस्मि चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
यस्तेऽभिलषितः कामो ब्रूहि कल्याणि मा चिरम् ॥ २४ ॥

मैं इस समय इस भूमण्डलका राजराजेश्वर हूँ, चारों वर्णोंकी रक्षा करनेवाला हूँ। कल्याणि ! तुम्हारा जो भी अभिलषित मनोरथ हो, उसे बताओ, देर न करो ॥ २४ ॥

सा तद्वचनमाज्ञाय परिगृह्य नराधिपम् ।
आत्मनो बलमाज्ञाय तत एनमुवाच ह ॥ २५ ॥

राजाकी बातको समझकर और उन्हें सब प्रकारसे वचनबद्ध करके अपनी शक्तिको भी ठीक-ठीक जान लेनेके बाद कैकेयीने उनसे कहा— ॥ २५ ॥

आभिषेचनिकं यत् ते रामार्थमुपकल्पितम् ।
भरतस्तदवाप्नोतु वनं गच्छतु राघवः ॥ २६ ॥

'महाराज ! आपने श्रीरामके लिये जो राज्याभिषेकका सामान तैयार कराया है, वह भरतको प्राप्त हो और राम वनमें चले जायँ' ॥ २६ ॥



स तद् राजा वचः श्रुत्वा विप्रियं दारुणोदयम् ।
दुःखार्तो भरतश्रेष्ठ न किंचिद् व्याजहार ह ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कैकेयीका यह अप्रिय एवं भयानक परिणामवाला वचन सुनकर राजा दशरथ दुःखसे आतुर हो अपने मुँहसे कुछ भी बोल न सके ॥ २७ ॥

ततस्तथोक्तं पितरं रामो विज्ञाय वीर्यवान् ।
वनं प्रतस्थे धर्मात्मा राजा सत्यो भवत्विति ॥ २८ ॥

श्रीरामचन्द्रजी शक्तिशाली होनेके साथ ही बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने पिताके पूर्वोक्त वरदानकी बात जानकर राजाके सत्यकी रक्षा हो, इस उद्देश्यसे स्वयं ही वनको प्रस्थान किया ॥ २८ ॥

तमन्वगच्छल्लक्ष्मीवान् धनुष्माँल्लक्ष्मणस्तदा ।
सीता च भार्या भद्रं ते वैदेही जनकात्मजा ॥ २९ ॥

राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो। श्रीरामचन्द्रजीके वन जाते समय उत्तम शोभासे सम्पन्न उनके भाई धनुर्धर लक्ष्मणने तथा उनकी पत्नी विदेहराजकुमारी जनकनन्दिनी सीताने भी उनका अनुसरण किया ॥ २९ ॥

ततो वनं गते रामे राजा दशरथस्तदा ।
समयुज्यत देहस्य कालपर्यायधर्मणा ॥ ३० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके वनमें चले जानेपर (उनके वियोगमें) राजा दशरथने शरीर त्याग दिया ॥ ३० ॥

रामं तु गतमाज्ञाय राजानं च तथागतम् ।
आनाय्य भरतं देवी कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी वनमें चले गये तथा राजा परलोकवासी हो गये, यह देखकर कैकेयीने भरतको ननिहालसे बुलवाया और इस प्रकार कहा— ॥ ३१ ॥

गतो दशरथः स्वर्गं वनस्थौ रामलक्ष्मणौ ।
गृहाण राज्यं विपुलं क्षेमं निहतकण्टकम् ॥ ३२ ॥

'बेटा ! तुम्हारे पिता महाराज दशरथ स्वर्गलोकको सिधार गये तथा श्रीराम और लक्ष्मण वनमें निवास करते हैं। अब यह विशाल राज्य सब प्रकारसे सुखद और निष्कण्टक हो गया है। तुम इसे ग्रहण करो' ॥ ३२ ॥

तामुवाच स धर्मात्मा नृशंसं बत ते कृतम् ।
पतिं हत्वा कुलं चेदमुत्साद्य धनलुब्धया ॥ ३३ ॥
अयशः पातयित्वा मे मूर्ध्नि त्वं कुलपांसने ।
सकामा भव मे मातरित्युक्त्वा प्ररुरोद ह ॥ ३४ ॥

भरत बड़े धर्मात्मा थे। वे माताकी बात सुनकर उससे बोले—'कुलकलङ्किनी जननी ! तूने धनके लोभमें पड़कर यह कितनी बड़ी क्रूरताका काम किया है ? पतिकी हत्या की और इस कुलका विनाश कर डाला। 'मेरे मस्तकपर कलङ्कका टीका लगाकर तू अपना मनोरथ पूर्ण कर ले।' ऐसा कहकर भरत फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ३३-३४ ॥

स चारित्रं विशोध्याथ सर्वप्रकृतिसंनिधौ ।
अन्वयाद् भ्रातरं रामं विनिवर्तनलालसः ॥ ३५ ॥

उन्होंने सारी प्रजा और मन्त्रियों आदिके निकट अपनी सफाई दी तथा भाई श्रीरामको वनसे लौटा लानेकी लालसासे उन्हींके पथका अनुसरण किया ॥ ३५ ॥

कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च सुदुःखितः ।
अग्रे प्रस्थाप्य यानैः स शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ ३६ ॥

वे कौसल्या, सुमित्रा तथा कैकेयीको सवारियोंद्वारा आगे भेजकर स्वयं अत्यन्त दुखी हो शत्रुघ्नके साथ (पैदल ही) वनको चले ॥ ३६ ॥

वसिष्ठवामदेवाभ्यां विप्रैश्चान्यैः सहस्रशः ।
पौरजानपदैः सार्धं रामानयनकाङ्क्षया ॥ ३७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेकी अभिलाषासे उन्होंने वसिष्ठ, वामदेव और दूसरे सहस्रों ब्राह्मणों तथा नगर एवं जनपदके लोगोंको साथ लेकर यात्रा की ॥ ३७ ॥

ददर्श चित्रकूटस्थं स रामं सहलक्ष्मणम् ।
तापसानामलंकारं धारयन्तं धनुर्धरम् ॥ ३८ ॥

चित्रकूट पहुँचकर भरतने लक्ष्मणसहित श्रीरामको



धनुष हाथमें लिये तपस्वीजनोंकी वेष-भूषा धारण किये देखा ॥ ३८ ॥

(श्रीराम उवाच

गच्छ तात प्रजा रक्ष्याः सत्यं रक्षाम्यहं पितुः ।)
विसर्जितः स रामेण पितुर्वचनकारिणा ।
नन्दिग्रामेऽकरोद् राज्यं पुरस्कृत्यास्य पादुके ॥ ३९ ॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने कहा—तात भरत ! अयोध्याको लौट जाओ । तुम्हें प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये और मैं पिताके सत्यकी रक्षा कर रहा हूँ । ऐसा कहकर पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने (समझा-बुझाकर) उन्हें विदा कर दिया । तब वे (लौटकर) बड़े भाईकी चरणपादुकाओंको आगे रखकर नन्दिग्राममें ठहर गये और वहींसे राज्यकी देख-भाल करने लगे ॥ ३९ ॥

रामस्तु पुनराशङ्क्य पौरजानपदागमम् ।
प्रविवेश महारण्यं शरभङ्गाश्रमं प्रति ॥ ४० ॥

श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ नगर और जनपदके लोगोंके बराबर आने-जानेकी आशङ्कासे शरभङ्ग मुनिके आश्रमके पास विशाल वनमें प्रवेश किया ॥ ४० ॥

सत्कृत्य शरभङ्गं स दण्डकारण्यमाश्रितः ।
नदीं गोदावरीं रम्यामाश्रित्य न्यवसत् तदा ॥ ४१ ॥

वहाँ शरभङ्गमुनिका सत्कार करके वे दण्डकारण्यमें चले गये और वहाँ सुरम्य गोदावरी नदीके तटका आश्रय लेकर रहने लगे ॥ ४१ ॥

वसतस्तस्य रामस्य ततः शूर्पणखाकृतम् ।
खरेणासीन्महद् वैरं जनस्थाननिवासिना ॥ ४२ ॥

वहाँ रहते समय, शूर्पणखाके (नाक, कान और ओंठ काटनेके) कारण श्रीरामचन्द्रजीका जनस्थाननिवासी खर नामक राक्षसके साथ महान् वैर हो गया ॥ ४२ ॥

रक्षार्थं तापसानां तु राघवो धर्मवत्सलः ।
चतुर्दश सहस्राणि जघान भुवि रक्षसाम् ॥ ४३ ॥
दूषणं च खरं चैव निहत्य सुमहाबलौ ।
चक्रे क्षेमं पुनर्धीमान् धर्मारण्यं स राघवः ॥ ४४ ॥

धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजीने तपस्वी मुनियोंकी रक्षाके लिये महाबली खर और दूषणको मारकर वहाँके चौदह हजार



राक्षसोंका संहार कर डाला तथा उन बुद्धिमान् रघुनाथजीने पुनः उस वनको क्षेमकारक धर्मारण्य बना दिया ॥ ४३-४४ ॥

हतेषु तेषु रक्षःसु ततः शूर्पणखा पुनः ।
ययौ निकृत्तनासोष्ठी लङ्कां भ्रातुर्निवेशनम् ॥ ४५ ॥

उन राक्षसोंके मारे जानेपर शूर्पणखा, जिसकी नाक और ओंठ काट लिये गये थे, पुनः लङ्कामें अपने भाई रावणके घर गयी ॥ ४५ ॥

ततो रावणमभ्येत्य राक्षसी दुःखमूर्च्छिता ।
पपात पादयोर्भ्रातुः संशुष्करुधिरानना ॥ ४६ ॥

रावणके पास पहुँचकर वह राक्षसी दुःखसे मूर्च्छित हो भाईके चरणोंमें गिर पड़ी । उसके मुखपर रक्त बहकर सूख गया था ॥ ४६ ॥

तां तथा विकृतां दृष्ट्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
उत्पपातासनात् क्रुद्धो दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥ ४७ ॥

बहिनका रूप इस प्रकार विकृत हुआ देखकर रावण क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और दाँतोंसे दाँत पीसता हुआ रोषपूर्वक आसनसे उठकर खड़ा हो गया ॥ ४७ ॥

स्वानमात्यान् विसृज्याथ विविक्ते तामुवाच सः ।
केनास्येवं कृता भद्रे मामचिन्त्यावमन्य च ॥ ४८ ॥

अपने मन्त्रियोंको विदा करके उसने एकान्तमें शूर्पणखासे पूछा—भद्रे ! किसने मेरी परवा न करके—मेरी सर्वथा अवहेलना करके तुम्हारी ऐसी दुर्दशा की है ? ॥ ४८ ॥

कः शूलं तीक्ष्णमासाद्य सर्वगात्रैर्निषेवते ।
कः शिरस्यग्निमाधाय विश्वस्तः स्वपते सुखम् ॥ ४९ ॥

'कौन तीखे शूलके पास जाकर उसे अपने सारे अङ्गोंमें चुभोना चाहता है ? कौन मूर्ख अपने सिरपर आग रखकर बेखटके सुखकी नींद सो रहा है ? ॥ ४९ ॥

आशीविषं घोरतरं पादेन स्पृशतीह कः ।
सिंहं केसरिणं कश्च दंष्ट्रायां स्पृश्य तिष्ठति ॥ ५० ॥

'कौन अत्यन्त भयंकर विषधर सर्पको पैरसे कुचल रहा है ? तथा कौन केसरी सिंहकी दाढ़ोंमें हाथ डालकर निश्चिन्त खड़ा है ?' ॥ ५० ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य स्रोतोभ्यस्तेजसोऽर्चिषः ।
निश्चेरुर्दह्यतो रात्रौ वृक्षस्येव स्वरन्ध्रतः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार बोलते हुए रावणके कान, नाक एवं आँख आदि छिद्रोंसे उसी प्रकार आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं, जिस प्रकार रातको जलते हुए वृक्षके छेदोंसे आगकी लपटें निकलती हैं ॥ ५१ ॥

तस्य तत् सर्वमाचख्यौ भगिनी रामविक्रमम् ।
खरदूषणसंयुक्तं राक्षसानां पराभवम् ॥ ५२ ॥

तब रावणकी बहिन शूर्पणखाने श्रीरामके उस पराक्रम और खर-दूषणसहित समस्त राक्षसोंके संहारका (सारा) वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५२ ॥

स निश्चित्य ततः कृत्यं स्वसारमुपसान्त्व्य च ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे राजा विधाय नगरे विधिम् ॥ ५३ ॥

यह सुनकर रावणने अपने कर्तव्यका निश्चय किया और अपनी बहिनको सान्त्वना देकर नगर आदिकी रक्षाका प्रबन्ध करके वह आकाशमार्गसे उड़ चला ॥ ५३ ॥

त्रिकूटं समतिक्रम्य कालपर्वतमेव च ।
ददर्श मकरावासं गम्भीरोदं महोदधिम् ॥ ५४ ॥

त्रिकूट और कालपर्वतको लाँघकर उसने मगरोंके निवासस्थान गहरे महासागरको देखा ॥ ५४ ॥

तमतीत्याथ गोकर्णमभ्यगच्छद् दशाननः ।
दयितं स्थानमव्यग्रं शूलपाणेर्महात्मनः ॥ ५५ ॥

उसे ऊपर-ही-ऊपर लाँघकर दशमुख रावण गोकर्णतीर्थमें गया, जो परमात्मा शूलपाणि शिवका प्रिय एवं अविचल स्थान है ॥ ५५ ॥

तत्राभ्यगच्छन्मारीचं पूर्वामात्यं दशाननः ।
पुरा रामभयादेव तापस्यं समुपाश्रितम् ॥ ५६ ॥

वहाँ रावण अपने भूतपूर्व मन्त्री मारीचसे मिला, जो श्रीरामचन्द्रजीके भयसे ही पहलेसे उस स्थानमें आकर तपस्या करता था ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रामवनाभिगमने सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें श्रीरामवनगमनविषयक दो सौ सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ५६½ श्लोक हैं)

अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मृगरूपधारी मारीचका वध तथा सीताका अपहरण

मार्कण्डेय उवाच

मारीचस्त्वथ सम्भ्रान्तो दृष्ट्वा रावणमागतम् ।
पूजयामास सत्कारैः फलमूलादिभिस्ततः ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! रावणको आया देख मारीच सहसा उठकर खड़ा हो गया और उसने फल-मूल आदि अतिथिसत्कारकी सामग्रियोंद्वारा उसका विधिवत् पूजन किया ॥ १ ॥

विश्रान्तं चैनमासीनमन्वासीनः स राक्षसः ।
उवाच प्रश्रितं वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥ २ ॥

जब रावण बैठकर विश्राम कर चुका, तब उसके पास बैठकर

बातचीत करनेमें कुशल राक्षस मारीचने वाक्यका मर्म समझनेमें निपुण रावणसे विनयपूर्वक कहा— ॥ २ ॥

न ते प्रकृतिमान् वर्णः कच्चित् क्षेमं पुरे तव ।
कच्चित् प्रकृतयः सर्वा भजन्ते त्वां यथा पुरा ॥ ३ ॥

'लङ्केश्वर ! तुम्हारे शरीरका रंग ठीक हालतमें नहीं है । तुम उदास दिखायी देते हो । तुम्हारे नगरमें कुशल तो है न ? समस्त प्रजा और मन्त्री आदि पहलेकी भाँति तुम्हारी सेवा करते हैं न ? ॥ ३ ॥

किमिहागमने चापि कार्यं ते राक्षसेश्वर ।
कृतमित्येव तद् विद्धि यद्यपि स्यात् सुदुष्करम् ॥ ४ ॥

'राक्षसराज ! कौन-सा ऐसा कार्य आ गया है, जिसके लिये तुम्हें यहाँतक आना पड़ा ? यदि वह मेरेद्वारा साध्य है, तो कितना ही कठिन क्यों न हो, उसे किया हुआ ही समझो' ॥ ४ ॥

शशंस रावणस्तस्मै तत् सर्वं रामचेष्टितम् ।
समासेनैव कार्याणि क्रोधामर्षसमन्वितः ॥ ५ ॥

रावण क्रोध और अमर्षमें भरा हुआ था । उसने एक-एक करके रामद्वारा किये हुए सब कार्य संक्षेपसे कह सुनाये ॥ ५ ॥

मारीचस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा समासेनैव रावणम् ।
अलं ते राममासाद्य वीर्यज्ञो ह्यस्मि तस्य वै ॥ ६ ॥

मारीचने सारी बातें सुनकर थोड़ेमें ही रावणको समझाते हुए कहा—'दशानन ! तुम श्रीरामसे भिड़नेका साहस न करो । मैं उनके पराक्रमको जानता हूँ ॥ ६ ॥

बाणवेगं हि कस्तस्य शक्तः सोढुं महात्मनः ।
प्रव्रज्यायां हि मे हेतुः स एव पुरुषर्षभः ॥ ७ ॥
विनाशमुखमेतत् ते केनाख्यातं दुरात्मना ।

'भला ! इस जगत्में कौन ऐसा वीर है, जो परमात्मा श्रीरामके बाणोंका वेग सह सके ? मैं जो यहाँ संन्यासी



बना बैठा हूँ, इसमें भी वे पुरुषरत्न श्रीराम ही कारण हैं । श्रीरामसे वैर मोल लेना विनाशके मुखमें जाना है । किस दुरात्माने तुम्हें ऐसी सलाह दी है ?' ॥ ७½ ॥

तमुवाचाथ सक्रोधो रावणः परिभर्त्सयन् ॥ ८ ॥
अकुर्वतोऽस्मद्वचनं स्यान्मृत्युरपि ते ध्रुवम् ।

मारीचकी बात सुनकर रावण और भी कुपित हो उठा और उसे डाँटते हुए बोला—'मारीच ! यदि तू मेरी बात नहीं मानेगा, तो भी तेरी मृत्यु निश्चित ही है ॥ ८½ ॥

मारीचश्चिन्तयामास विशिष्टान्मरणं वरम् ॥ ९ ॥
अवश्यं मरणे प्राप्ते करिष्याम्यस्य यन्मतम् ।

मारीचने सोचा, 'यदि मृत्यु निश्चित ही है, तो श्रेष्ठ पुरुषके हाथसे ही मरना अच्छा होगा; अतः रावणका जो अभीष्ट कार्य है, उसे अवश्य करूँगा' ॥ ९½ ॥

ततस्तं प्रत्युवाचाथ मारीचो राक्षसं वरम् ॥ १० ॥
किं ते साह्यं मया कार्यं करिष्याम्यवशोऽपि तत् ।

तदनन्तर उसने राक्षसराज रावणसे कहा—'अच्छा, बताओ, मुझे तुम्हारी क्या सहायता करनी होगी ? इच्छा न होनेपर भी मैं विवश होकर उसे करूँगा' ॥ १०½ ॥

तमब्रवीद् दशग्रीवो गच्छ सीतां प्रलोभय ॥ ११ ॥
रत्नशृङ्गो मृगो भूत्वा रत्नचित्रतनूरुहः ।
ध्रुवं सीता समालक्ष्य त्वां रामं चोदयिष्यति ॥ १२ ॥

तब दशाननने उससे कहा—'तुम एक ऐसे मनोहर मृगका रूप धारण करो, जिसके सींग रत्नमय प्रतीत हों और शरीरके रोएँ भी रत्नोंके ही समान चित्र-विचित्र दिखायी दें । फिर रामके आश्रमपर जाओ और सीताको लुभाओ । सीता तुम्हें देख लेनेपर निश्चय ही रामसे यह अनुरोध करेगी कि 'आप इस मृगको पकड़ लाइये' ॥ ११-१२ ॥

अपक्रान्ते च काकुत्स्थे सीता वश्या भविष्यति ।
तामादायापनेष्यामि ततः स न भविष्यति ॥ १३ ॥
भार्यावियोगाद् दुर्बुद्धिरेतत् साह्यं कुरुष्व मे ।

'तुम्हारे पीछे रामके अपने आश्रमसे दूर निकल जानेपर सीताको वशमें लाना सहज हो जायगा । मैं उसे आश्रमसे हरकर ले जाऊँगा और दुर्बुद्धि राम अपनी प्यारी पत्नीके वियोगसे व्याकुल होकर प्राण दे देगा । बस, मेरी इतनी ही सहायता कर दो' ॥ १३½ ॥

इत्येवमुक्तो मारीचः कृत्वोदकमथात्मनः ॥ १४ ॥
रावणं पुरतो यान्तमन्वगच्छत् सुदुःखितः ।

रावणके ऐसा कहनेपर मारीच स्वयं ही अपना श्राद्ध-तर्पण करके अत्यन्त दुखी होकर आगे जाते हुए रावणके पीछे-पीछे चला ॥ १४½ ॥

ततस्तस्याश्रमं गत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ १५ ॥
चक्रतुस्तद् तथा सर्वमुभौ यत् पूर्वमन्त्रितम् ।

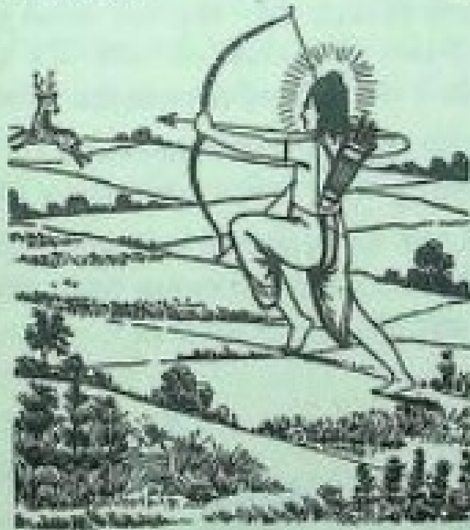
तदनन्तर अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमके समीप जाकर उन दोनोंने पहले जैसी सलाह कर रक्खी थी, उसके अनुसार सब कार्य किया ॥ १५½ ॥

रावणस्तु यतिर्भूत्वा मुण्डः कुण्डी त्रिदण्डधृक् ॥ १६ ॥
मृगश्च भूत्वा मारीचस्तं देशमुपजग्मतुः ।
दर्शयामास मारीचो वैदेहीं मृगरूपधृक् ॥ १७ ॥

रावण मूँड़ मुड़ाये, भिक्षापात्र हाथमें लिये एवं त्रिदण्डधारी संन्यासीका रूप धारण करके और मारीच मृग बनकर—दोनों उस स्थानपर गये। मारीचने विदेहनन्दिनी सीताके समक्ष अपना मृगरूप प्रकट किया ॥ १६-१७ ॥

चोदयामास तस्यार्थे सा रामं विधिचोदिता ।
रामस्तस्याः प्रियं कुर्वन् धनुरादाय सत्वरः ॥ १८ ॥
रक्षार्थे लक्ष्मणं न्यस्य प्रययौ मृगलिप्सया ।

विधिके विधानसे प्रेरित होकर सीताने उस मृगको लानेके लिये श्रीरामचन्द्रजीको भेजा। श्रीरामचन्द्रजी सीताका प्रिय करनेके लिये धनुष हाथमें ले लक्ष्मणको सीताकी रक्षाका भार सौंपकर मृगको लानेकी इच्छासे तुरंत चल दिये ॥ १८½ ॥



स धन्वी बद्धतूणीरः खड्गगोधाङ्गुलित्रवान् ॥ १९ ॥
अन्वधावन्मृगं रामो रुद्रस्तारामृगं यथा ।

वे धनुष-बाण ले, पीठपर तरकस बाँधकर, कटिमें कृपाण लटकाये तथा हाथोंमें दस्ताने पहने उस मृगके पीछे उसी प्रकार दौड़े, जैसे मृगशिरा नक्षत्रके पीछे भगवान् रुद्र दौड़े थे ॥ १९½ ॥

सोऽन्तर्हितः पुनस्तस्य दर्शनं राक्षसो व्रजन् ॥ २० ॥
चकर्ष महदध्वानं रामस्तं बुबुधे ततः ।
निशाचरं विदित्वा तं राघवः प्रतिभानवान् ॥ २१ ॥
अमोघं शरमादाय जघान मृगरूपिणम् ।

मायावी राक्षस मारीच कभी छिप जाता और कभी नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो जाता था। इस प्रकार वह श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे बहुत दूर खींच ले गया। तब श्रीरामचन्द्रजी यह ताड़ गये कि यह कोई मायावी राक्षस है। यह बात ध्यानमें आते ही प्रतिभाशाली श्रीरघुनाथजीने एक अमोघ बाण लेकर उस मृगरूपधारी निशाचरको मार डाला ॥

स रामबाणाभिहतः कृत्वा रामस्वरं तदा ॥ २२ ॥
हा सीते लक्ष्मणेत्येवं चुक्रोशार्तस्वरेण ह ।

श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे आहत हो मरते समय मारीचने उनके ही स्वरमें 'हा सीते, हा लक्ष्मण' कहकर आर्तनाद किया ॥ २२½ ॥

शुश्राव तस्य वैदेही ततस्तां करुणां गिरम् ॥ २३ ॥
सा प्राद्रवद् यतः शब्दस्तामुवाचाथ लक्ष्मणः ।
अलं ते शङ्कया भीरु को रामं प्रहरिष्यति ॥ २४ ॥
मुहूर्ताद् द्रक्ष्यसे रामं भर्तारं त्वं शुचिस्मिते ।

विदेहनन्दिनी सीताने भी उसकी वह करुणाभरी पुकार सुनी। उसकी पुकार सुनते ही जिस ओरसे वह आवाज आयी थी, उसी ओर वे दौड़ पड़ीं। तब लक्ष्मणने उनसे कहा—'भीरु ! डरनेकी कोई बात नहीं है। भला, कौन ऐसा है, जो भगवान् रामको मार सकेगा ? शुचिस्मिते ! तुम दो ही घड़ीमें अपने पति भगवान् श्रीरामको यहाँ उपस्थित देखोगी ॥ २३-२४½ ॥

इत्युक्ता सा प्ररुदती पर्यशङ्कत लक्ष्मणम् ॥ २५ ॥
हता वै स्त्रीस्वभावेन शुक्लचारित्रभूषणा ।
सा तं परुषमारब्धा वक्तुं साध्वी पतिव्रता ॥ २६ ॥

लक्ष्मणकी यह बात सुनकर रोती हुई सीताने उन्हें संदेहकी दृष्टिसे देखा। यद्यपि शुद्ध सदाचार ही उनका आभूषण था। वे साध्वी और पतिव्रता थीं; तथापि स्त्री-स्वभाववश उस समय उनकी बुद्धि मारी गयी। उन्होंने लक्ष्मणको कठोर बातें सुनानी आरम्भ कीं—॥ २५-२६ ॥

नैव कामो भवेन्मूढ यं त्वं प्रार्थयसे हृदा ।
अप्यहं शस्त्रमादाय हन्यामात्मानमात्मना ॥ २७ ॥
पतेयं गिरिशृङ्गाद् वा विशेयं वा हुताशनम् ।
रामं भर्तारमुत्सृज्य न त्वहं त्वां कथंचन ॥ २८ ॥
निहीनमुपतिष्ठेयं शार्दूली क्रोष्टुकं यथा ।

'ओ मूढ ! तुम मन-ही-मन जिस वस्तुको पाना चाहते हो, तुम्हारा वह मनोरथ कभी पूर्ण न होगा। मैं स्वयं तलवार लेकर अपना गला काट लूँगी, पर्वतके शिखरसे कूद पड़ूँगी अथवा जलती हुई आगमें समा जाऊँगी; परंतु राम-जैसे स्वामीको छोड़कर तुम-जैसे नीच पुरुषका कदापि

वरण न करूँगी। जैसे सिंहिनी सियारको नहीं स्वीकार कर सकती, उसी प्रकार मैं तुम्हें नहीं ग्रहण करूँगी' ॥

एतादृशं वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः प्रियराघवः ॥ २९ ॥
पिधाय कर्णौ सद्वृत्तः प्रस्थितो येन राघवः ।
स रामस्य पदं गृह्य प्रससार धनुर्धरः ॥ ३० ॥
अवीक्षमाणो बिम्बोष्ठीं प्रययौ लक्ष्मणस्तदा ।

लक्ष्मण सदाचारी तथा श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमी थे। उन्होंने सीताके ये कठोर वचन सुनकर अपने दोनों कान बंद कर लिये और उसी मार्गसे चल दिये, जिससे श्रीरामचन्द्रजी गये थे। उस समय लक्ष्मणके हाथमें धनुष था। उन्होंने बिम्बफलके समान अरुण अधरोंवाली सीताकी ओर आँख उठाकर देखातक नहीं। श्रीरामके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए उन्होंने वहाँसे प्रस्थान कर दिया ॥२९-३०½॥

एतस्मिन्नन्तरे रक्षो रावणः प्रत्यदृश्यत ॥ ३१ ॥
अभव्यो भव्यरूपेण भस्मच्छन्न इवानलः ।
यतिवेषप्रतिच्छन्नो जिहीर्षुस्तामनिन्दिताम् ॥ ३२ ॥

इसी समय अवसर पाकर राक्षस रावण साध्वी सीताको हर ले जानेकी इच्छासे वहाँ दिखायी दिया। वह भयानक निशाचर सुन्दर रूप धारण करके राखमें छिपी हुई आगके समान संन्यासीके वेषमें अपने यथार्थ रूपको छिपाये हुए था ॥

सा तमालक्ष्य सम्प्राप्तं धर्मज्ञा जनकात्मजा ।
निमन्त्रयामास तदा फलमूलाशनादिभिः ॥ ३३ ॥

उस समय यतिको अपने आश्रमपर आया हुआ देख धर्मको जाननेवाली जनकनन्दिनी सीता फल-मूलके भोजन आदिसे अतिथिसत्कारके लिये उसे निमन्त्रित किया ॥ ३३ ॥

अवमन्य ततः सर्वं स्वरूपं प्रत्यपद्यत ।
सान्त्वयामास वैदेहीमिति राक्षसपुङ्गवः ॥ ३४ ॥

राक्षसराज रावण सीताकी दी हुई उन सभी वस्तुओंकी अवहेलना करके अपने असली रूपमें प्रकट हो गया और विदेहराजकुमारीको इस प्रकार सान्त्वना देने लगा—॥

सीते राक्षसराजोऽहं रावणो नाम विश्रुतः ।
मम लङ्का पुरी नाम्ना रम्या पारे महोदधेः ॥ ३५ ॥

'सीते! मैं राक्षसोंका राजा हूँ। मेरा 'रावण' नाम सर्वत्र विख्यात है। समुद्रके पार बसी हुई रमणीय लङ्कापुरी मेरी राजधानी है ॥ ३५ ॥

तत्र त्वं नरनारीषु शोभिष्यसि मया सह ।
भार्या मे भव सुश्रोणि तापसं त्यज राघवम् ॥ ३६ ॥

'वहाँ नर-नारियोंके बीच मेरे साथ रहकर तुम बड़ी शोभा पाओगी। अतः सुन्दरी! तुम मेरी पत्नी हो जाओ और इस तपस्वी रामको छोड़ दो' ॥ ३६ ॥

एवमादीनि वाक्यानि श्रुत्वा तस्याथ जानकी ।
पिधाय कर्णौ सुश्रोणी मैवमित्यब्रवीद् वचः ॥ ३७ ॥

प्रपतेद् द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकलीभवेत् ।
शैत्यमग्निरियान्नाहं त्यजेयं रघुनन्दनम् ॥ ३८ ॥

रावणके ऐसे वचन सुनकर सुन्दरी जनककिशोरीने अपने दोनों कान बंद कर लिये और उससे इस प्रकार कहा—'बस, अब ऐसी बातें मुँहसे न निकाल। नक्षत्रोंसहित आकाश फट पड़े, पृथ्वी टूक-टूक हो जाय और अग्नि अपनी उष्णताका त्याग करके शीतल हो जाय, परंतु मैं रघुकुल-नन्दन श्रीरामचन्द्रजीको नहीं छोड़ सकती ॥ ३७-३८ ॥

कथं हि भिन्नकरटं पद्मिनं वनगोचरम् ।
उपस्थाय महानागं करेणुः सूकरं स्पृशेत् ॥ ३९ ॥

'गण्डस्थलसे मदकी धारा बहानेवाले पद्ममालामण्डित वनवासी गजराजकी सेवामें उपस्थित होकर कोई हथिनी किसी शूकरको कैसे छू सकती है? ॥ ३९ ॥

कथं हि पीत्वा माध्वीकं पीत्वा च मधुमाधवीम् ।
लोभं सौवीरके कुर्यान्नारी काचिदिति स्मरेत् ॥ ४० ॥

'जो फूलोंके रससे बने हुए मधुर पेय तथा मधुमक्षिकाओंद्वारा तैयार किया हुआ मधु पी चुकी हो, ऐसी कोई भी नारी काँजीके रसका लोभ कैसे कर सकती है?' ॥ ४० ॥

इति सा तं समाभाष्य प्रविवेशाश्रमं ततः ।
क्रोधात् प्रस्फुरमाणोष्ठी विधुन्वाना करौ मुहुः ॥ ४१ ॥

रावणसे इस प्रकार कहकर सीता अपने आश्रममें प्रवेश करने लगीं। उस समय क्रोधके मारे उनके ओठ फड़क रहे थे और वे अपने दोनों हाथोंको बार-बार हिला रही थीं।

तामभिद्रुत्य सुश्रोणीं रावणः प्रत्यषेधयत् ।
भर्त्सयित्वा तु रूक्षेण स्वरेण गतचेतनाम् ॥ ४२ ॥

इसी समय रावणने दौड़कर उनका मार्ग रोक लिया और कठोर स्वरसे उन्हें डराना, धमकाना आरम्भ किया। इससे वे भयके मारे मूर्छित हो गयीं ॥ ४२ ॥



मूर्धजेषु निजग्राह ऊर्ध्वमाचक्रमे ततः ।
तां ददर्श ततो गृध्रो जटायुर्गिरिगोचरः ।
रुदतीं राम रामेति ह्रियमाणां तपस्विनीम् ॥ ४३ ॥

तब रावणने उनके केश पकड़ लिये और आकाश-मार्गसे लङ्काकी ओर प्रस्थान किया । उस समय वे तपस्विनी सीता 'हा राम-हा रामकी' रट लगाती हुई रो रही थीं और वह राक्षस उन्हें हरकर लिये जा रहा था । इसी अवस्थामें एक पर्वतकी गुफामें रहनेवाले गृध्रराज जटायुने उन्हें देखा ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि मारीचवधे सीताहरणे च अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें मारीचवध तथा सीताहरणविषयक
दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७८ ॥

एकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रावणद्वारा जटायुका वध, श्रीरामद्वारा उसका अन्त्येष्टि-संस्कार, कबन्धका वध तथा उसके दिव्य स्वरूपसे वार्तालाप

मार्कण्डेय उवाच

सखा दशरथस्यासीज्जटायुररुणात्मजः ।
गृध्रराजो महावीरः सम्पातिर्यस्य सोदरः ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! महावीर गृध्रराज जटायु (सूर्यके सारथि) अरुणके पुत्र थे । उनके बड़े भाईका नाम सम्पाति था । राजा दशरथके साथ उनकी बड़ी मित्रता थी ॥ १ ॥

स ददर्श तदा सीतां रावणाङ्कगतां स्नुषाम् ।
सक्रोधोऽभ्यद्रवत् पक्षी रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ २ ॥

इसी नाते सीताको वे अपनी पुत्रवधू मानते थे । जब जटायुने उन्हें रावणकी गोदमें पराधीन होकर पड़ी हुई देखा, तब उनके क्रोधकी सीमा न रही । वे राक्षसराज रावणपर टूट पड़े ॥ २ ॥

अथैनमब्रवीद् गृध्रो मुञ्च मुञ्चेति मैथिलीम् ।
ध्रियमाणे मयि कथं हरिष्यसि निशाचर ॥ ३ ॥

इस प्रकार और वे बोले—'निशाचर ! मिथिलेशकुमारीको छोड़ दे, छोड़ दे । मेरे जीते-जी तू इन्हें कैसे हर ले जायगा ?' ॥ ३ ॥

न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे वधूम् ।
उक्त्वैवं राक्षसेन्द्रं तं चकर्त नखरैर्भृशम् ॥ ४ ॥

'यदि मेरी पुत्रवधू सीताको तू नहीं छोड़ेगा, तो मेरे हाथसे जीवित नहीं बच सकेगा ।' ऐसा कहकर जटायुने अपने नखोंसे राक्षसराज रावणको बहुत घायल कर दिया ॥ ४ ॥

पक्षतुण्डप्रहारैश्च शतशो जर्जरीकृतम् ।
चक्षार रुधिरं भूरि गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥ ५ ॥

उन्होंने पंखों और चोंचसे मार-मारकर उसके सैकड़ों घाव कर दिये । रावणका सारा शरीर जर्जर हो गया तथा देहसे रक्तकी धाराएँ बह चलीं, मानो पर्वत अनेक झरनोंसे आर्द्र हो रहा हो ॥ ५ ॥

स वध्यमानो गृध्रेण रामप्रियहितैषिणा ।
खड्गमादाय चिच्छेद भुजौ तस्य पतत्त्रिणः ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय एवं हित चाहनेवाले जटायुको इस प्रकार चोट करते देख रावणने तलवार लेकर उन पक्षिराजके दोनों पंख काट डाले ॥ ६ ॥



निहत्य गृध्रराजं स भिन्नाभ्रशिखरोपमम् ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे सीतां गृहीत्वाङ्केन राक्षसः ॥ ७ ॥

बादलोंको भेदनेवाले पर्वत-शिखरके समान गृध्रराज जटायुको घायल करके रावण पुनः सीताको गोदमें लिये हुए आकाशमार्गसे चल दिया ॥ ७ ॥

यत्र यत्र तु वैदेही पश्यत्याश्रममण्डलम् ।
सरो वा सरितो वापि तत्र मुञ्चति भूषणम् ॥ ८ ॥

विदेहकुमारी सीता जहाँ-जहाँ कोई आश्रम, सरोवर या

नदी देखतीं, वहाँ-वहाँ अपना कोई-न-कोई आभूषण गिरा देती थीं ॥ ८ ॥

सा ददर्श गिरिप्रस्थे पञ्च वानरपुङ्गवान् ।
तत्र वासो महद्दिव्यमुत्ससर्ज मनस्विनी ॥ ९ ॥

आगे जानेपर उन्होंने एक पर्वतके शिखरपर बैठे हुए पाँच श्रेष्ठ वानरोंको देखा। वहाँ उन बुद्धिमती देवीने अपना एक अत्यन्त दिव्य वस्त्र गिरा दिया ॥ ९ ॥

तत् तेषां वानरेन्द्राणां पपात पवनोद्धुतम् ।
मध्ये सुपीतं पञ्चानां विद्युन्मेघान्तरे यथा ॥ १० ॥

वह सुन्दर पीले रंगका वस्त्र आकाशमें उड़ता हुआ उन पाँचों वानरोंके मध्यभागमें जा गिरा, मानो मेघोंके बीचमें विद्युत् प्रकट हो गयी हो ॥ १० ॥

अचिरेणातिचक्राम खेचरः खे चरन्निव ।
ददर्शाथ पुरीं रम्यां बहुद्वारां मनोरमाम् ॥ ११ ॥

आकाशचारी पक्षीकी भाँति आकाशगामी रावण थोड़े ही समयमें अपना मार्ग तय करके लङ्काके निकट आ पहुँचा। उसने दूरसे ही अपनी रमणीय एवं मनोहर पुरीको देखा, जो अनेक दरवाजोंसे सुशोभित हो रही थी ॥ ११ ॥

प्राकारवप्रसम्बाधां निर्मितां विश्वकर्मणा ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां ससीतो राक्षसेश्वरः ॥ १२ ॥

साक्षात् विश्वकर्माने उस पुरीका निर्माण किया था। वह सब ओरसे चहारदीवारी तथा खाइयोंद्वारा घिरी हुई थी। राक्षसराज रावणने सीताके साथ उसी लङ्कापुरीमें प्रवेश किया ॥ १२ ॥

एवं हृतायां वैदेह्यां रामो हत्वा महामृगम् ।
निवृत्तो ददृशे धीमान् भ्रातरं लक्ष्मणं तथा ॥ १३ ॥

इस प्रकार सीताका अपहरण हो जानेपर बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजी उस महामृगरूप मारीचको मारकर लौटे; उस समय मार्गमें उन्हें लक्ष्मण दिखायी दिये ॥ १३ ॥

कथमुत्सृज्य वैदेहीं वने राक्षससेविते ।
इति तं भ्रातरं दृष्ट्वा प्राप्तोऽसीति व्यगर्हयत् ॥ १४ ॥

भाईको देखकर श्रीरामने उन्हें कोसते हुए कहा—'लक्ष्मण! राक्षसोंसे भरे हुए इस घोर जंगलमें जानकीको अकेली छोड़कर तुम यहाँ कैसे चले आये!' ॥ १४ ॥

मृगरूपधरेणाथ रक्षसा सोऽपकर्षणम् ।
भ्रातुरागमनं चैव चिन्तयन् पर्यतप्यत ॥ १५ ॥

'मृगरूपधारी राक्षस मुझे आश्रमसे दूर खींच लाया और भाई भी आश्रमको अरक्षित छोड़कर मेरे पास आ गया', यह सोचते हुए श्रीरामचन्द्रजी मन-ही-मन संतप्त हो उठे ॥ १५ ॥

गर्हयन्नेव रामस्तु त्वरितस्तं समासदत् ।
अपि जीवति वैदेही नेति पश्यामि लक्ष्मण ॥ १६ ॥

उपर्युक्तरूपसे लक्ष्मणकी निन्दा करते हुए श्रीरामचन्द्रजी तुरंत उनके पास आ गये और कहने लगे—'लक्ष्मण! मैं देखता हूँ, सीता जीवित भी है या नहीं ॥ १६ ॥

तस्य तत् सर्वमाचख्यौ सीताया लक्ष्मणो वचः ।
यदुक्तवत्यसदृशं वैदेही पश्चिमं वचः ॥ १७ ॥

तब लक्ष्मणने सीताकी वे सारी अनुचित एवं आक्षेपपूर्ण बातें, जिन्हें उन्होंने अन्तमें कहा था, कह सुनायीं ॥ १७ ॥

दह्यमानेन तु हृदा रामोऽभ्यपतदाश्रमम् ।
स ददर्श तदा गृध्रं निहतं पर्वतोपमम् ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका हृदय शोकाग्निसे दग्ध हो रहा था। वे शीघ्रतापूर्वक आश्रमकी ओर बढ़े। मार्गमें उन्हें पर्वताकार गृध्रराज जटायु दिखायी दिये, जो रावणके हाथसे घायल हुए पड़े थे ॥ १८ ॥

राक्षसं शङ्कमानस्तं विकृष्य बलवद् धनुः ।
अभ्यधावत काकुत्स्थस्ततस्तं सहलक्ष्मणः ॥ १९ ॥

लक्ष्मणसहित श्रीरामने उन्हें राक्षस समझकर अपने प्रबल धनुषको खींचा और उनपर धावा कर दिया ॥ १९ ॥

स तावुवाच तेजस्वी सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
गृध्रराजोऽस्मि भद्रं वां सखा दशरथस्य वै ॥ २० ॥

तब तेजस्वी जटायुने साथ आये हुए श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंसे कहा—'आप दोनोंका भला हो। मैं राजा दशरथका मित्र गृध्रराज जटायु हूँ' ॥ २० ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा संगृह्य धनुषी शुभे ।
कोऽयं पितरमस्माकं नाम्नाऽऽहेत्यूचतुश्च तौ ॥ २१ ॥

उनकी ये बातें सुनकर उन्होंने अपने सुन्दर धनुष उतारकर हाथमें ले लिये और परस्पर पूछने लगे कि 'यह कौन है, जो हमारे पिताका नाम लेकर परिचय दे रहा है' ॥ २१ ॥

ततो ददृशतुस्तौ तं छिन्नपक्षद्वयं खगम् ।
तयोः शशंस गृध्रस्तु सीतार्थे रावणाद् वधम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर उन्होंने पास आकर देखा—जटायुके दोनों पंख कटे हुए हैं। गृध्रने बताया कि 'सीताको छुड़ानेके लिये युद्ध करते समय मैं रावणके हाथसे अत्यन्त घायल कर दिया गया हूँ' ॥ २२ ॥

अपृच्छद् राघवो गृध्रं रावणः कां दिशं गतः ।
तस्य गृध्रः शिरःकम्पैराचचक्षे ममार च ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने जटायुसे पूछा—'रावण किस दिशामें



ओर गया है?' उसने सिर हिलाकर संकेतसे दक्षिण दिशा बतायी और अपने प्राण त्याग दिये ॥ २३ ॥

दक्षिणामिति काकुत्स्थो विदित्वास्य तदिङ्गितम्।
संस्कारं लम्भयामास सखायं पूजयन् पितुः ॥ २४ ॥

उनके संकेतके अनुसार दक्षिण दिशा समझ लेनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने पिताके मित्र होनेके नाते जटायुको आदर देते हुए उनका विधिपूर्वक अन्त्येष्टि-संस्कार किया ॥ २४ ॥

ततो दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं व्यपविद्धबृसीमठम्।
विध्वस्तकलशं शून्यं गोमायुशतसंकुलम् ॥ २५ ॥

तदनन्तर आश्रमपर पहुँचकर उन्होंने देखा, कुशकी चटाई बाहर फेंकी हुई है, कुटी उजाड़ हो गयी है, घर सूना पड़ा है, कलश फूटे पड़े हैं और सारे आश्रममें सैकड़ों गीदड़ भरे हुए हैं ॥ २५ ॥

दुःखशोकसमाविष्टौ वैदेहीहरणार्दितौ।
जग्मतुर्दण्डकारण्यं दक्षिणेन परंतपौ ॥ २६ ॥

सीताका अपहरण हो जानेसे दोनों भाइयोंको बड़ी वेदना हुई। वे दुःख और शोकमें डूब गये। फिर शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीराम और लक्ष्मण दण्डकारण्यसे दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये ॥ २६ ॥

वने महति तस्मिंस्तु रामः सौमित्रिणा सह।
ददर्श मृगयूथानि द्रवमाणानि सर्वशः ॥ २७ ॥

उस विशाल वनमें लक्ष्मणसहित श्रीरामने देखा कि मृगोंके झुंड सब ओर भाग रहे हैं ॥ २७ ॥

शब्दं च घोरं सत्त्वानां दावाग्नेरिव वर्धतः।
अपश्येतां मुहूर्ताच्च कबन्धं घोरदर्शनम् ॥ २८ ॥

वन-जन्तुओंका भयंकर शब्द ऐसा जान पड़ता था, मानो वहाँ सब ओर दावानल फैल रहा हो और उससे भयभीत हुए प्राणी आर्तनाद कर रहे हों। दो ही घड़ीमें उन दोनों भाइयोंने देखा, सामने एक 'कबन्ध' (धड़) प्रकट हुआ है, जो देखनेमें अत्यन्त भयंकर है ॥ २८ ॥

मेघपर्वतसंकाशं शालस्कन्धं महाभुजम्।
उरोगतविशालाक्षं महोदरमहामुखम् ॥ २९ ॥

वह मेघके समान काला और पर्वतके समान विशालकाय था। सालकी शाखाके समान उसके कंधे और बड़ी-बड़ी भुजाएँ थीं। उसकी चौड़ी छातीमें दो बड़ी-बड़ी आँखें चमक रही थीं और लंबे-से पेटमें बहुत बड़ा मुख दिखायी दे रहा था ॥ २९ ॥

यदृच्छयाथ तद् रक्षः करे जग्राह लक्ष्मणम्।
विषादमगमत् सद्यः सौमित्रिरथ भारत ॥ ३० ॥

वह एक राक्षस था। उसने सहसा आकर लक्ष्मणका एक हाथ पकड़ लिया। भारत! वह देख सुमित्रानन्दन लक्ष्मण तत्काल बहुत दुखी हो गये ॥ ३० ॥

स राममभिसम्प्रेक्ष्य कृष्यते येन तन्मुखम्।
विषण्णश्चाब्रवीद् रामं पश्यावस्थामिमां मम ॥ ३१ ॥

जिस ओर उस राक्षसका मुख था, उसी ओर वे खिंचे चले जा रहे थे। तब श्रीरामकी ओर देखकर वे अत्यन्त विषादग्रस्त होकर बोले—'भैया! देखिये, मेरी यह क्या अवस्था हो रही है? ॥ ३१ ॥

हरणं चैव वैदेह्या मम चायमुपप्लवः।
राज्यभ्रंशश्च भवतस्तातस्य मरणं तथा ॥ ३२ ॥

'विदेहकुमारीका अपहरण, मेरा इस प्रकार असमयमें विपत्तिग्रस्त होना, आपका राज्यसे निर्वासन तथा पिताजीकी मृत्यु—(इस प्रकार संकटपर संकट आता जा रहा है) ॥ ३२ ॥

नाहं त्वां सह वैदेह्या समेतं कोसलागतम्।
द्रक्ष्यामि पृथिवीराज्ये पितृपैतामहे स्थितम् ॥ ३३ ॥

'जान पड़ता है, जब आप सीताके साथ अयोध्यामें लौटकर पिता-पितामहोंकी परम्परासे प्राप्त हुए इस भूमण्डलके राज्यपर प्रतिष्ठित होंगे, उस समय मैं आपका दर्शन न कर सकूँगा ॥ ३३ ॥

द्रक्ष्यन्त्यार्यस्य धन्या ये कुशलाजशमीदलैः।
अभिषिक्तस्य वदनं सोमं शान्तघनं यथा ॥ ३४ ॥

'जो लोग कुश, लाजा और शमीपत्र आदिके द्वारा

राज्यपर अभिषिक्त हुए आप आर्यके मेघोंके आवरणसे रहित शरत्कालीन चन्द्रमाके समान मनोहर मुखका दर्शन करेंगे, वे धन्य हैं' ॥ ३४ ॥

एवं बहुविधं धीमान् विललाप स लक्ष्मणः।
तमुवाचाथ काकुत्स्थः सम्भ्रमेष्वप्यसम्भ्रमः ॥ ३५ ॥

बुद्धिमान् लक्ष्मण इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगे। भगवान् श्रीराम घबराहटके समय भी घबराते नहीं थे। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—॥ ३५ ॥

मा विषीद नरव्याघ्र नैष कश्चिन्मयि स्थिते।
छिन्ध्यस्य दक्षिणं बाहुं छिन्नः सव्यो मया भुजः ॥ ३६ ॥

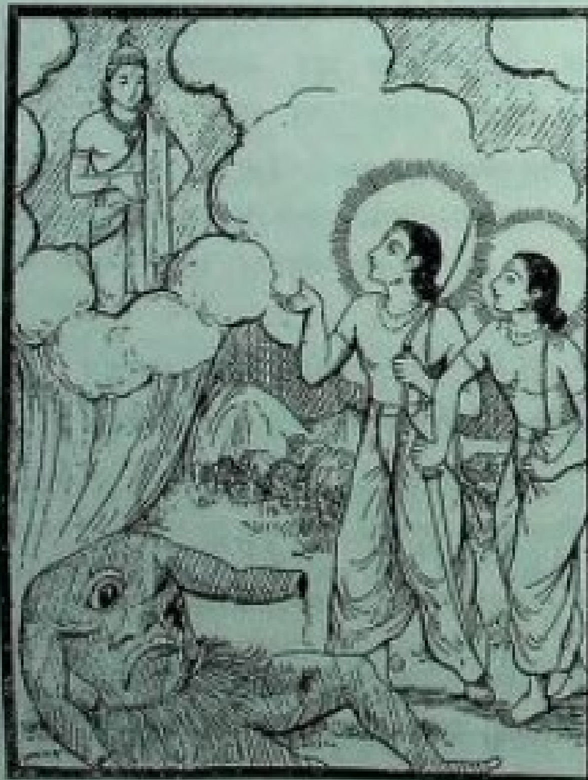
'नरश्रेष्ठ ! तुम खेद न करो। मेरे रहते यह राक्षस कोई चीज नहीं है; इससे तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँच सकती। तुम इसकी दाहिनी बाँह काट डालो। मैं बायीं भुजा काट रहा हूँ' ॥ ३६ ॥

इत्येवं वदता तस्य भुजो रामेण पातितः।
खड्गेन भृशतीक्ष्णेन निकृत्तस्तिलकाण्डवत् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार कहते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त तीखी तलवारसे उस राक्षसकी एक बाँह तिलके पौधेकी तरह काट गिरायी ॥ ३७ ॥

ततोऽस्य दक्षिणं बाहुं खड्गेनाजघ्निवान् बली।
सौमित्रिरपि सम्प्रेक्ष्य भ्रातरं राघवं स्थितम् ॥ ३८ ॥
पुनर्जघान पार्श्वे वै तद् रक्षो लक्ष्मणो भृशम्।
गतासुरपतद् भूमौ कबन्धः सुमहांस्ततः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर बलवान् सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने भी अपने



खड्गसे उसकी दाहिनी बाँह काट डाली और भाई श्रीरामको खड़ा देखकर उन्होंने उसकी पसलीपर भी बड़े जोरसे प्रहार किया। फिर तो वह महान् राक्षस कबन्ध प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३८-३९ ॥

तस्य देहाद् विनिःसृत्य पुरुषो दिव्यदर्शनः।
ददृशे दिवमास्थाय दिवि सूर्य इव ज्वलन् ॥ ४० ॥

उसकी देहसे एक दिव्यरूपधारी पुरुष निकलकर आकाशमें खड़ा दिखायी दिया। वह सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा था ॥ ४० ॥

पप्रच्छ रामस्तं वाग्मी कस्त्वं प्रब्रूहि पृच्छतः।
कामया किमिदं चित्रमाश्चर्यं प्रतिभाति मे ॥ ४१ ॥

तब कुशल वक्ता भगवान् श्रीरामने उससे पूछा—'तुम कौन हो ? अपना परिचय दो। मेरे पूछनेपर अपनी इच्छाके अनुसार बताओ, यह कैसी अद्भुत एवं आश्चर्यमयी घटना प्रतीत हो रही है ?' ॥ ४१ ॥

तस्याचचक्षे गन्धर्वो विश्वावसुरहं नृप।
प्राप्तो ब्राह्मणशापेन योनिं राक्षससेविताम् ॥ ४२ ॥
रावणेन हृता सीता राज्ञा लङ्काधिवासिना।
सुग्रीवमभिगच्छस्व स ते साह्यं करिष्यति ॥ ४३ ॥

उसने कहा—'राजन् ! मैं विश्वावसु नामक गन्धर्व हूँ। एक ब्राह्मणके शापसे इस राक्षसयोनिमें आ गया था—लङ्कावासी राक्षसराज रावणने आपकी पत्नी सीताका अपहरण किया है। आप वानरराज सुग्रीवसे मिलिये। वे आपकी सहायता करेंगे ॥ ४२-४३ ॥

एषा पम्पा शिवजला हंसकारण्डवायुता।
ऋष्यमूकस्य शैलस्य संनिकर्षे तटाकिनी ॥ ४४ ॥

'यह थोड़ी ही दूरपर पवित्र जलसे भरा हुआ पम्पा-सरोवर है, जिसमें हंस और कारण्डव आदि पक्षी चहक रहे हैं। वह सरोवर ऋष्यमूक पर्वतसे सटा हुआ है ॥ ४४ ॥

वसते तत्र सुग्रीवश्चतुर्भिः सचिवैः सह।
भ्राता वानरराजस्य वालिनो हेममालिनः ॥ ४५ ॥

'वहाँ अपने चार मन्त्रियोंके साथ सुवर्णमालाधारी वानरराज वालीके भाई सुग्रीव निवास करते हैं ॥ ४५ ॥

तेन त्वं सह संगम्य दुःखमूलं निवेदय।
समानशीलो भवतः साहाय्यं स करिष्यति ॥ ४६ ॥

'उनसे मिलकर आप अपने दुःखका कारण बताइये। उनका शील-स्वभाव आपके ही समान है। वे निश्चय ही आपकी सहायता करेंगे ॥ ४६ ॥

एतावच्छक्यमस्माभिर्वक्तुं द्रष्टासि जानकीम्।
ध्रुवं वानरराजस्य विदितो रावणालयः ॥ ४७ ॥

'मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि आपकी जनकनन्दिनी सीतासे अवश्य भेंट होगी। वानरराज सुग्रीवको रावणके घरका पता निश्चय ही ज्ञात है ॥ ४७ ॥

इत्युक्त्वान्तर्हितो दिव्यः पुरुषः स महाप्रभः।
विस्मयं जग्मतुश्चोभौ प्रवीरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४८ ॥

ऐसा कहकर वह महातेजस्वी दिव्य पुरुष वहीं अन्तर्हित हो गया। वीरवर श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको उसके दर्शन और वार्तालापसे बड़ा विस्मय हुआ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि कबन्धहनने एकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें कबन्धवधविषयक दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७९ ॥

अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राम और सुग्रीवकी मित्रता, वाली और सुग्रीवका युद्ध, श्रीरामके द्वारा वालीका वध तथा लङ्काकी अशोकवाटिकामें राक्षसियोंद्वारा डरायी हुई सीताको त्रिजटाका आश्वासन

मार्कण्डेय उवाच

ततोऽविदूरे नलिनीं प्रभूतकमलोत्पलाम्।
सीताहरणदुःखार्तः पम्पां रामः समासदत् ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! तदनन्तर सीताहरणके दुःखसे पीड़ित हो श्रीरामचन्द्रजी पम्पासरोवरपर गये, जो वहाँसे थोड़ी ही दूरपर था। उसमें बहुत-से कमल और उत्पल खिले हुए थे ॥ १ ॥

मारुतेन सुशीतेन सुखेनामृतगन्धिना।
सेव्यमानो वने तस्मिञ्जगाम मनसा प्रियाम् ॥ २ ॥

उस वनमें अमृतकी-सी सुगन्ध लिये मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली सुखद शीतल वायुका स्पर्श पाकर श्रीरामचन्द्रजी मन-ही-मन अपनी प्रिया सीताका चिन्तन करने लगे ॥ २ ॥

विललाप स राजेन्द्रस्तत्र कान्तामनुस्मरन्।
कामबाणाभिसंतप्तः सौमित्रिस्तमथाब्रवीत् ॥ ३ ॥

अपनी प्राणवल्लभाका बारंबार स्मरण करके कामबाणसे संतप्त हुए-से महाराज श्रीराम विलाप करने लगे। उस समय सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने उनसे कहा— ॥ ३ ॥

न त्वामेवंविधो भावः स्प्रष्टुमर्हति मानद।
आत्मवन्तमिव व्याधिः पुरुषं वृद्धशीलिनम् ॥ ४ ॥

'मानद! मनपर काबू रखनेवाले तथा वृद्धोंके समान संयम-नियमसे रहनेवाले पुरुषको जैसे कोई रोग नहीं छू सकता, उसी प्रकार आपको ऐसे दैन्यभावका स्पर्श होना उचित नहीं जान पड़ता है ॥ ४ ॥

प्रवृत्तिरुपलब्धा ते वैदेह्या रावणस्य च।
तां त्वं पुरुषकारेण बुद्ध्या चैवोपपादय ॥ ५ ॥

'आपको सीता तथा उनका अपहरण करनेवाले रावणका समाचार मिल ही गया है। अब आप अपने पुरुषार्थ और बुद्धिबलसे जानकीको प्राप्त कीजिये ॥ ५ ॥

अभिगच्छाव सुग्रीवं शैलस्थं हरिपुङ्गवम्।
मयि शिष्ये च भृत्ये च सहाये च समाश्वस ॥ ६ ॥

'हम दोनों यहाँसे वानरराज सुग्रीवके पास चलें, जो ऋष्यमूक पर्वतके शिखरपर रहते हैं। मैं आपका शिष्य, सेवक और सहायक हूँ। मेरे रहते आपको धैर्य रखना चाहिये ॥ ६ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्लक्ष्मणेन स राघवः।
उक्तः प्रकृतिमापेदे कार्ये चानन्तरोऽभवत् ॥ ७ ॥

इस प्रकार लक्ष्मणद्वारा अनेक प्रकारके वचनोंसे धैर्य दिलाये जानेपर श्रीरामचन्द्रजी स्वस्थ हुए और आवश्यक कार्यमें लग गये ॥ ७ ॥

निषेव्य वारि पम्पायास्तर्पयित्वा पितॄनपि।
प्रतस्थतुरुभौ वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ८ ॥

उन्होंने पम्पासरोवरके जलमें स्नान करके पितरोंका तर्पण किया। फिर उन दोनों वीर भ्राता श्रीराम और लक्ष्मणने वहाँसे प्रस्थान किया ॥ ८ ॥

तावृष्यमूकमभ्येत्य बहुमूलफलद्रुमम्।
गिर्यग्रे वानरान् पञ्च वीरौ ददृशतुस्तदा ॥ ९ ॥

प्रचुर फल, मूल और वृक्षोंसे भरे हुए ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँचकर उन दोनों वीरोंने देखा, पर्वतके शिखरपर पाँच वानर बैठे हुए हैं ॥ ९ ॥

सुग्रीवः प्रेषयामास सचिवं वानरं तयोः।
बुद्धिमन्तं हनूमन्तं हिमवन्तमिव स्थितम् ॥ १० ॥

सुग्रीवने हिमालयके समान गम्भीर भावसे बैठे हुए अपने बुद्धिमान् सचिव हनुमान्‌को उन दोनोंके पास भेजा ॥ १० ॥

तेन सम्भाष्य पूर्वं तौ सुग्रीवमभिजग्मतुः।
सख्यं वानरराजेन चक्रे रामस्तदा नृप ॥ ११ ॥

उनके साथ पहले बातचीत हो जानेपर वे दोनों भाई सुग्रीवके पास गये। राजन्! उस समय श्रीरामचन्द्रजीने वानरराज सुग्रीवके साथ मैत्री की ॥ ११ ॥

तद् वासो दर्शयामासुस्तस्य कार्ये निवेदिते ।
वानराणां तु यत् सीता ह्रियमाणा व्यपासृजत् ॥ १२ ॥

रामने सुग्रीवके समक्ष जब अपना कार्य निवेदन किया, तब उन्होंने श्रीरामको वह वस्त्र दिखाया, जिसे अपहरणकालमें सीताने वानरोंके बीचमें डाल दिया था ॥ १२ ॥



तत् प्रत्ययकरं लब्ध्वा सुग्रीवं प्लवगाधिपम् ।
पृथिव्यां वानरैश्वर्ये स्वयं रामोऽभ्यषेचयत् ॥ १३ ॥

रावणद्वारा सीताके अपहृत होनेका यह विश्वासजनक प्रमाण पाकर श्रीरामने स्वयं ही वानरराज सुग्रीवको अखिल भूमण्डलके वानरोंके सम्राट्पदपर अभिषिक्त कर दिया ॥ १३ ॥

प्रतिजज्ञे च काकुत्स्थः समरे वालिनो वधम् ।
सुग्रीवश्चापि वैदेह्याः पुनरानयनं नृप ॥ १४ ॥

साथ ही उन्होंने युद्धमें वालीके वधकी भी प्रतिज्ञा की । राजन् ! तब सुग्रीवने भी विदेहनन्दिनी सीताको पुनः ढूँढ़ लानेकी प्रतिज्ञा की ॥ १४ ॥

इत्युक्त्वा समयं कृत्वा विश्वास्य च परस्परम् ।
अभ्येत्य सर्वे किष्किन्धां तस्थुर्युद्धाभिकाङ्क्षिणः ॥ १५ ॥

इस प्रकार प्रतिज्ञापूर्वक एक-दूसरेको विश्वास दिलाकर वे सबके सब किष्किन्धापुरीमें आये और युद्धकी अभिलाषासे डटकर खड़े हो गये ॥ १५ ॥

सुग्रीवः प्राप्य किष्किन्धां ननादौघनिभस्वनः ।
नास्य तन्ममृषे वाली तारा तं प्रत्यषेधयत् ॥ १६ ॥

सुग्रीवने किष्किन्धामें जाकर बड़े जोरसे सिंहनाद किया, मानो बहुत बड़े जनसमूहका शब्द गूँज उठा हो । वालीसे यह सहन नहीं हो सका । जब वह युद्धके लिये निकलने लगा, तब उसकी स्त्री ताराने उसे मना करते हुए कहा— ॥ १६ ॥

यथा नदति सुग्रीवो बलवानेष वानरः ।
मन्ये चाश्रयवान् प्राप्तो न त्वं निष्क्रान्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

'नाथ ! आज सुग्रीव जिस प्रकार गर्जना कर रहा है, उससे मालूम होता है, इस समय उसका बल बढ़ा हुआ है । मेरी समझमें उसे कोई बलवान् सहायक मिल गया है, तभी वह यहाँतक आ सका है । अतः आप घरसे न निकलें' ॥ १७ ॥

हेममाली ततो वाली तारां ताराधिपाननाम् ।
प्रोवाच वचनं वाग्मी तां वानरपतिः पतिः ॥ १८ ॥

तब सुवर्णमालासे विभूषित तारापति वानरराज वाली, जो बातचीत करनेमें कुशल था, अपनी चन्द्रमुखी पत्नी तारासे इस प्रकार बोला— ॥ १८ ॥

सर्वभूतरुतज्ञा त्वं पश्य बुद्ध्या समन्विता ।
केन चाश्रयवान् प्राप्तो ममैष भ्रातृगन्धिकः ॥ १९ ॥

'प्रिये ! तुम समस्त प्राणियोंकी बोली समझती हो, साथ ही बुद्धिमती भी हो । अतः सोचो तो सही, यह मेरा नाममात्रका भाई किसका सहारा लेकर यहाँ आया है ?' ॥ १९ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु तारा ताराधिपप्रभा ।
पतिमित्यब्रवीत् प्राज्ञा शृणु सर्वं कपीश्वर ॥ २० ॥

तारा अपनी अङ्गकान्तिसे चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाके समान उद्दीप्त हो रही थी । उस विदुषीने दो घड़ीतक विचार करके अपने पतिसे कहा—'कपीश्वर ! मैं सब बातें बताती हूँ, सुनिये ॥ २० ॥

हृतदारो महासत्त्वो रामो दशरथात्मजः ।
तुल्यारिमित्रतां प्राप्तः सुग्रीवेण धनुर्धरः ॥ २१ ॥

'दशरथनन्दन श्रीराम महान् शक्तिशाली वीर हैं । उनकी पत्नीका किसीने अपहरण कर लिया है । उसकी खोजके लिये उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता की है और दोनोंने एक दूसरेके शत्रुको शत्रु तथा मित्रको मित्र मान लिया है । श्रीरामचन्द्रजी बड़े धनुर्धर हैं ॥ २१ ॥

भ्राता चास्य महाबाहुः सौमित्रिरपराजितः ।
लक्ष्मणो नाम मेधावी स्थितः कार्यार्थसिद्धये ॥ २२ ॥

'उनके भाई महाबाहु सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी भी किसीसे परास्त होनेवाले नहीं हैं । उनकी बुद्धि बड़ी प्रखर है । वे श्रीरामके प्रत्येक कार्यकी सिद्धिके लिये उनके साथ रहते हैं ॥ २२ ॥

मैन्दश्च द्विविदश्चापि हनूमांश्चानिलात्मजः ।
जाम्बवानृक्षराजश्च सुग्रीवसचिवाः स्थिताः ॥ २३ ॥

'इनके सिवा, मैन्द, द्विविद, वायुपुत्र हनुमान् तथा ऋक्षराज जाम्बवान्—ये सुग्रीवके चार मन्त्री हैं ॥ २३ ॥

सर्व एते महात्मानो बुद्धिमन्तो महाबलाः ।
अलं तव विनाशाय रामवीर्यबलाश्रयात् ॥ २४ ॥

'वे सब-के-सब महामनस्वी, बुद्धिमान् और महाबली हैं । श्रीरामचन्द्रजीके बल-पराक्रमका सहारा मिल जानेसे वे लोग आपको मार डालनेमें समर्थ हैं' ॥ २४ ॥

तस्यास्तदाक्षिप्य वचो हितमुक्तं कपीश्वरः ।
पर्यशङ्कत तामीर्षुः सुग्रीवगतमानसाम् ॥ २५ ॥

यद्यपि ताराने वालीके हितकी बात कही थी, तो भी वानरराज वालीने उसके कथनपर आक्षेप किया और ईर्ष्यावश उसके मनमें यह शङ्का हो गयी कि तारा मन-ही-मन सुग्रीवको चाहती है ॥ २५ ॥

तारां परुषमुक्त्वा तु निर्जगाम गुहामुखात् ।
स्थितं माल्यवतोऽभ्याशे सुग्रीवं सोऽभ्यभाषत ॥ २६ ॥

ताराको कठोर बातें सुनाकर वाली किष्किन्धाकी गुफाके द्वारसे बाहर निकला और माल्यवान् पर्वतके निकट खड़े हुए सुग्रीवसे इस प्रकार बोला—॥ २६ ॥

असकृत् त्वं मया पूर्वं निर्जितो जीवितप्रियः ।
मुक्तो ज्ञातिरिति ज्ञात्वा का त्वरा मरणे पुनः ॥ २७ ॥

'अरे ! तू तो पहले अनेक बार युद्धमें मेरेद्वारा परास्त हो चुका है और जीवनका अधिक लोभ होनेके कारण भागकर जान बचाता फिरा है । मैंने भी अपना भाई समझकर तुझे जीवित छोड़ दिया है । फिर आज तुझे मरनेके लिये इतनी उतावली क्यों हो गयी है ?' ॥ २७ ॥

इत्युक्तः प्राह सुग्रीवो भ्रातरं हेतुमद् वचः ।
प्राप्तकालममित्रघ्नो रामं सम्बोधयन्निव ॥ २८ ॥

वालीके ऐसा कहनेपर शत्रुहन्ता सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीको परिस्थितिका ज्ञान कराते हुए-से अपने उस भाईसे अवसरके अनुरूप युक्तियुक्त वचन बोले—॥ २८ ॥

हृतराज्यस्य मे राजन् हृतदारस्य च त्वया ।
किं मे जीवितसामर्थ्यमिति विद्धि समागतम् ॥ २९ ॥

'राजन् ! तुमने मेरा राज्य हर लिया है, मेरी स्त्रीको भी अपने अधिकारमें कर लिया है, ऐसी दशामें मुझमें जीवित रहनेकी शक्ति ही कहाँ है ? यही सोचकर मरनेके लिये चला आया हूँ । आप मेरे आगमनका यही उद्देश्य समझ लें' ॥ २९ ॥

एवमुक्त्वा बहुविधं ततस्तौ संनिपेततुः ।
समरे वालिसुग्रीवौ शालतालशिलायुधौ ॥ ३० ॥

इस प्रकार बहुत-सी बातें करके वाली और सुग्रीव दोनों एक दूसरेसे गुँथ गये । उस युद्धमें शाल और तालके वृक्ष तथा पत्थरकी चट्टानें—ये ही उनके अस्त्र-शस्त्र थे ॥ ३० ॥

उभौ जघ्नतुरन्योन्यमुभौ भूमौ निपेततुः ।
उभौ ववल्गतुश्चित्रं मुष्टिभिश्च निजघ्नतुः ॥ ३१ ॥

दोनों दोनोंपर प्रहार करते, दोनों जमीनपर गिर जाते, फिर दोनों ही उछल-कूदकर विचित्र ढंगसे पैंतरे बदलते तथा मुक्कों और घूसोंसे एक दूसरेको मारते थे ॥ ३१ ॥

उभौ रुधिरसंसिक्तौ नखदन्तपरिक्षतौ ।
शुशुभाते तदा वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३२ ॥

दोनों नख और दाँतोंके आघातसे क्षत-विक्षत हो रक्तसे लथपथ हो रहे थे । उस समय वे दोनों वीर खिले हुए पलाशके दो वृक्षोंकी भाँति शोभा पाते थे ॥ ३२ ॥

न विशेषस्तयोर्युद्धे यदा कश्चन दृश्यते ।
सुग्रीवस्य तदा मालां हनुमान् कण्ठ आसजत् ॥ ३३ ॥

जब युद्धमें उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी दिया, तब हनुमान्‌जीने सुग्रीवकी पहचानके लिये उनके गलेमें एक माला डाल दी ॥ ३३ ॥

स मालया तदा वीरः शुशुभे कण्ठसक्तया ।
श्रीमानिव महाशैलो मलयो मेघमालया ॥ ३४ ॥

कण्ठमें पड़ी हुई उस मालासे वीर सुग्रीव उस समय मेघपंक्तिसे सुशोभित महापर्वत मलयकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ३४ ॥

कृतचिह्नं तु सुग्रीवं रामो दृष्ट्वा महाधनुः ।
विचकर्ष धनुःश्रेष्ठं वालिमुद्दिश्य लक्ष्यवत् ॥ ३५ ॥
विस्फारस्तस्य धनुषो यन्त्रस्येव तदा बभौ ।
वितत्रास तदा वाली शरेणाभिहतोरसि ॥ ३६ ॥

महाधनुर्धर श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको चिह्न धारण किये



देख वालीको लक्ष्य बनाकर अपना महान् धनुष खींचा। उस धनुषकी टंकार मशीनकी भयंकर आवाजके समान जान पड़ती थी। उसे सुनकर वाली भयभीत हो उठा। इतनेमें ही श्रीरामके बाणने उसकी छातीपर भारी चोट की॥ ३५-३६॥

स भिन्नहृदयो वाली वक्त्राच्छोणितमुद्वमन्।
ददर्शावस्थितं रामं ततः सौमित्रिणा सह॥ ३७॥

इससे वालीका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया और वह अपने मुँहसे रक्तवमन करने लगा। सामने ही उसे लक्ष्मणके साथ खड़े हुए श्रीराम दिखायी दिये॥ ३७॥

गर्हयित्वा स काकुत्स्थं पपात भुवि मूर्च्छितः।
तारा ददर्श तं भूमौ तारापतिसमौजसम्॥ ३८॥

तब वह (छिपकर आघात करनेके कारण) श्रीरामचन्द्रजीकी निन्दा करके पृथ्वीपर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। ताराने चन्द्रमाके समान तेजस्वी अपने वीर पति वालीको प्राणहीन होकर पृथ्वीपर पड़ा देखा॥ ३८॥

हते वालिनि सुग्रीवः किष्किन्धां प्रत्यपद्यत।
तां च तारापतिमुखीं तारां निपतितेश्वराम्॥ ३९॥

वालीके मारे जानेपर अनाथ हुई किष्किन्धापुरी तथा चन्द्रमुखी तारा सुग्रीवको प्राप्त हुई॥ ३९॥

रामस्तु चतुरो मासान् पृष्ठे माल्यवतः शुभे।
निवासमकरोद् धीमान् सुग्रीवेणाभ्युपस्थितः॥ ४०॥

परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने माल्यवान् पर्वतकी सुन्दर घाटीमें वर्षाके चार महीनोंतक निवास किया। समय-समयपर सुग्रीव भी उनकी सेवामें उपस्थित होते रहते थे॥ ४०॥

रावणोऽपि पुरीं गत्वा लङ्कां कामबलात्कृतः।
सीतां निवेशयामास भवने नन्दनोपमे॥ ४१॥
अशोकवनिकाभ्याशे तापसाश्रमसंनिभे।
भर्तृस्मरणतन्वङ्गी तापसीवेषधारिणी॥ ४२॥

इधर कामके वशीभूत हुए रावणने भी लङ्कापुरीमें पहुँचकर सीताको अशोकवाटिकाके निकट तपस्वी मुनियोंके आश्रमकी भाँति शान्तिपूर्ण तथा नन्दनवनके समान रमणीय भवनमें ठहराया। पतिका निरन्तर चिन्तन करते-करते सीताका शरीर दुर्बल हो गया था। वे तपस्विनीवेषमें वहाँ रहती थीं॥ ४१-४२॥

उपवासतपःशीला तत्रास पृथुलेक्षणा।
उवास दुःखवसतिं फलमूलकृताशना॥ ४३॥

उपवास और तपस्या करनेका उनका स्वभाव-सा बन गया था। विशाल नेत्रोंवाली जानकी वहाँ फल-मूल खाकर बड़े दुःखसे दिन बिताती थीं॥ ४३॥

दिदेश राक्षसीस्तत्र रक्षणे राक्षसाधिपः।
प्रासासिशूलपरशुमुद्गरालातधारिणीः॥ ४४॥

राक्षसराज रावणने सीताकी रक्षाके लिये कुछ राक्षसियोंको नियुक्त कर दिया था, जो भाला, तलवार, त्रिशूल, फरसा, मुद्गर और जलती हुई लुआठी लिये वहाँ पहरा देती थीं॥ ४४॥

द्व्यक्षीं त्र्यक्षीं ललाटाक्षीं दीर्घजिह्वामजिह्विकाम्।
त्रिस्तनीमेकपादां च त्रिजटामेकलोचनाम्॥ ४५॥

उनमेंसे किसीके दो आँखें थीं, किसीके तीन। किसीके ललाटमें ही आँखें थीं, किसीके बहुत बड़ी जिह्वा थी। तो किसीके जीभ थी ही नहीं। किसीके तीन स्तन थे तो किसीके एक पैर। कोई अपने सिरपर तीन जटाएँ रखती थी, तो किसीके एक ही आँख थी॥ ४५॥

एताश्चान्याश्च दीप्ताक्ष्यः करभोत्कटमूर्धजाः।
परिवार्यासते सीतां दिवारात्रमतन्द्रिताः॥ ४६॥

ये तथा दूसरी बहुत-सी राक्षसियाँ निद्रा और आलस्यको छोड़कर दिन-रात सीताको घेरे रहती थीं। उनकी आँखें आगकी तरह प्रज्वलित होती थीं और सिरके बाल ऊँटोंके समान रूखे तथा भूरे थे॥ ४६॥

तास्तु तामायतापाङ्गीं पिशाच्यो दारुणस्वराः।
तर्जयन्ति सदा रौद्राः परुषव्यञ्जनस्वराः॥ ४७॥

वे पिशाची स्त्रियाँ देखनेमें बड़ी भयंकर थीं। उनका स्वर अत्यन्त दारुण था। उनके मुखसे जो स्वर और व्यञ्जन निकलते थे, वे बड़े कठोर होते थे। वे राक्षसियाँ निम्नाङ्कित बातें कहकर विशाल नेत्रोंवाली सीताको सदा डाँटती-फटकारती रहती थीं—॥ ४७॥

खादाम पाटयामैनां तिलशः प्रविभज्य ताम्।
येयं भर्तारमस्माकमवमन्येह जीवति॥ ४८॥

'अरी! यह हमारे स्वामीकी अवहेलना करके अबतक यहाँ जीवित कैसे है? हम इसे चीर डालें। इसे तिल-तिल काटकर खा जायँ'॥ ४८॥

इत्येवं परिभर्त्सन्तीस्त्रास्यमाना पुनः पुनः।
भर्तृशोकसमाविष्टा निःश्वस्येदमुवाच ताः॥ ४९॥

इस तरह कठोर वचनोंद्वारा डराने-धमकानेवाली उन राक्षसियोंसे बार-बार डरायी जाती हुई सीता पतिवियोगके शोकसे संतप्त हो लंबी साँसें खींचती हुई बोलीं—॥ ४९॥

आर्याः खादत मां शीघ्रं न मे लोभोऽस्ति जीविते।
विना तं पुण्डरीकाक्षं नीलकुञ्चितमूर्धजम्॥ ५०॥
अप्येवाहं निराहारा जीवितप्रियवर्जिता।
शोषयिष्यामि गात्राणि व्याली तालगता यथा॥ ५१॥

न त्वन्यमभिगच्छेयं पुमांसं राघवादृते ।
इति जानीत सत्यं मे क्रियतां यदनन्तरम् ॥ ५२ ॥

'बहिनो ! तुमलोग शीघ्र मुझे मारकर खा जाओ । अब इस जीवनके लिये मुझे तनिक भी लोभ नहीं है । मैं काले घुँघराले केश-कलापसे सुशोभित अपने स्वामी कमलनयन भगवान् श्रीरामके बिना जीना ही नहीं चाहती । प्राणवल्लभ रघुनाथजीके दर्शनसे वञ्चित होनेके कारण निराहार ही रहकर ताड़के पेड़पर रहनेवाली नागिनकी तरह मैं अपने शरीरको सुखा डालूँगी; परंतु श्रीरामके सिवा दूसरे किसी पुरुषका सेवन कदापि नहीं करूँगी । मेरी इस बातको सत्य समझो और इसके बाद जो कुछ करना हो, करो' ॥ ५०—५२ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा राक्षस्यस्ताः खरस्वनाः ।
आख्यातुं राक्षसेन्द्राय जग्मुस्तत् सर्वमादृताः ॥ ५३ ॥

सीताकी यह बात सुनकर कठोर बोली बोलनेवाली वे राक्षसियाँ राक्षसराज रावणको आदरपूर्वक यह सब समाचार निवेदन करनेके लिये चली गयीं ॥ ५३ ॥

गतासु तासु सर्वासु त्रिजटा नाम राक्षसी ।
सान्त्वयामास वैदेहीं धर्मज्ञा प्रियवादिनी ॥ ५४ ॥

वहाँ केवल धर्मको जाननेवाली प्रियवादिनी त्रिजटा नामकी राक्षसी रह गयी । अन्य सब राक्षसियोंके चले जानेपर उसने सीताको सान्त्वना देते हुए कहा—॥ ५४ ॥

सीते वक्ष्यामि ते किंचिद् विश्वासं कुरु मे सखि ।
भयं त्वं त्यज वामोरु शृणु चेदं वचो मम ॥ ५५ ॥

'सखी सीते ! मैं तुमसे एक बात कहूँगी । तुम मुझपर विश्वास करो । वामोरु ! तुम भय छोड़ो और मेरी यह बात सुनो ॥ ५५ ॥

अविन्ध्यो नाम मेधावी वृद्धो राक्षसपुङ्गवः ।
स रामस्य हितान्वेषी त्वदर्थे हि स मावदत् ॥ ५६ ॥

'यहाँ अविन्ध्य नामसे प्रसिद्ध एक बुद्धिमान्, वृद्ध और श्रेष्ठ राक्षस रहते हैं, जो सदा श्रीरामचन्द्रजीके हितका चिन्तन करते रहते हैं । उन्होंने तुमसे कहनेके लिये मेरेद्वारा यह संदेश भेजा है ॥ ५६ ॥

सीता मद्वचनाद् वाच्या समाश्वास्य प्रसाद्य च ।
भर्ता ते कुशली रामो लक्ष्मणानुगतो बली ॥ ५७ ॥
सख्यं वानरराजेन शक्रप्रतिमतेजसा ।
कृतवान् राघवः श्रीमांस्त्वदर्थे च समुद्यतः ॥ ५८ ॥
मा च तेऽस्तु भयं भीरु रावणाल्लोकगर्हितात् ।
नलकूबरशापेन रक्षिता ह्यसि नन्दिनि ॥ ५९ ॥
शप्तो ह्येष पुरा पापो वधूं रम्भां परामृशन् ।
न शक्नोत्यवशां नारीमुपैतुमजितेन्द्रियः ॥ ६० ॥
क्षिप्रमेष्यति ते भर्ता सुग्रीवेणाभिरक्षितः ।
सौमित्रिसहितो धीमांस्त्वां चेतो मोक्षयिष्यति ॥ ६१ ॥

'उनका कहना है कि त्रिजटे ! तुम मेरी ओरसे सीताको समझा-बुझाकर संतुष्ट करके यह कहना कि—'तुम्हारे स्वामी महाबली श्रीराम लक्ष्मणसहित सकुशल हैं । श्रीमान् रघुनाथजीने इन्द्रतुल्य तेजस्वी वानरराज सुग्रीवके साथ मैत्री की है और तुम्हें यहाँसे छुड़ानेके लिये उद्योग आरम्भ कर दिया है; अतः भीरु ! अब तुम्हें लोकनिन्दित रावणसे तनिक भी भय नहीं करना चाहिये । नन्दिनी ! नलकूबरने रावणको जो शाप दे रक्खा है, उसीसे तुम सदा सुरक्षित रहोगी । कुछ समय पहलेकी बात है, इस पापी रावणने नलकूबरकी पत्नी एवं अपनी पुत्रवधूके तुल्य रम्भाका स्पर्श किया था, इसीसे उसको शाप प्राप्त हुआ है । यद्यपि यह रावण जितेन्द्रिय नहीं है, तो भी किसी अवशा—स्वतन्त्रतापूर्वक उसे न चाहनेवाली नारीके पास नहीं जा सकता है । सुग्रीवद्वारा सुरक्षित तुम्हारे स्वामी बुद्धिमान् भगवान् श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके साथ शीघ्र ही यहाँ आयेंगे और तुम्हें यहाँसे छुड़ा ले जायँगे' ॥ ५७—६१ ॥

स्वप्ना हि सुमहाघोरा दृष्टा मेऽनिष्टदर्शनाः ।
विनाशायास्य दुर्बुद्धेः पौलस्त्यकुलघातिनः ॥ ६२ ॥

(अविन्ध्यका संदेश सुनाकर फिर त्रिजटाने अपनी ओरसे कहा—) 'सखी ! मैंने भी रातमें बड़े भयंकर स्वप्न देखे हैं, जो इस पुलस्त्यकुल-घातक दुर्बुद्धि रावणके विनाश एवं अनिष्टकी सूचना देनेवाले हैं ॥ ६२ ॥

दारुणो ह्येष दुष्टात्मा क्षुद्रकर्मा निशाचरः ।
स्वभावाच्छीलदोषेण सर्वेषां भयवर्धनः ॥ ६३ ॥

'यह दारुण दुष्टात्मा तथा क्षुद्रकर्म करनेवाला निशाचर अपने स्वभाव और शीलदोषसे सब लोगोंका भय बढ़ा रहा है ॥ ६३ ॥

स्पर्धते सर्वदेवैर्यः कालोपहतचेतनः ।
मया विनाशलिङ्गानि स्वप्ने दृष्टानि तस्य वै ॥ ६४ ॥

'कालसे इसकी बुद्धि मारी गयी है; अतः यह समस्त देवताओंसे ईर्ष्या रखता है । मैंने स्वप्नमें जो कुछ देखा है, वह सब इसके विनाशकी सूचना दे रहा है ॥ ६४ ॥

तैलाभिषिक्तो विकचो मज्जन् पङ्के दशाननः ।
असकृत् खरयुक्ते तु रथे नृत्यन्निव स्थितः ॥ ६५ ॥

'सपनेमें मैंने देखा है कि रावण तेलसे नहाये, मूँड़ मुँड़ाये, कीचड़में डूब रहा है । फिर कई बार देखनेमें आया कि वह गदहोंसे जुते हुए रथपर खड़ा होकर नृत्य-सा कर रहा है ॥ ६५ ॥

कुम्भकर्णादयश्चेमे नग्नाः पतितमूर्धजाः ।
गच्छन्ति दक्षिणामाशां रक्तमाल्यानुलेपनाः ॥ ६६ ॥

'उसके साथ ही ये कुम्भकर्ण आदि राक्षस भी मूँड़

मुँड़ाये, लाल चन्दन लगाये, लाल फूलोंकी माला पहने, नंगे होकर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहे हैं ॥ ६६ ॥

श्वेतातपत्रः सोष्णीषः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
श्वेतपर्वतमारूढ एक एव विभीषणः ॥ ६७ ॥

'केवल विभीषण ही श्वेत छत्र धारण किये, सफेद पगड़ी पहने एवं श्वेत पुष्पोंकी मालासे अलंकृत हो श्वेत चन्दन लगाये श्वेतपर्वतपर आरूढ दिखायी दिये ॥ ६७ ॥

सचिवाश्चास्य चत्वारः शुक्लमाल्यानुलेपनाः ।
श्वेतपर्वतमारूढा मोक्ष्यन्तेऽस्मान्महाभयात् ॥ ६८ ॥

'इनके चारों मन्त्री भी श्वेत पुष्पमाला और चन्दनसे चर्चित हो श्वेत पर्वतके शिखरपर बैठे थे; अतः विभीषणके साथ वे भी आनेवाले महान् भयसे मुक्त हो जायँगे ॥ ६८ ॥

रामस्यास्त्रेण पृथिवी परिक्षिप्ता ससागरा ।
यशसा पृथिवीं कृत्स्नां पूरयिष्यति ते पतिः ॥ ६९ ॥

'स्वप्नमें मुझे यह भी दिखायी दिया है कि भगवान् श्रीरामके बाणोंसे समुद्रसहित सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी है; अतः यह निश्चित है कि तुम्हारे पतिदेव अपने सुयशसे समस्त भूमण्डलको परिपूर्ण कर देंगे ॥ ६९ ॥

अस्थिसंचयमारूढो भुञ्जानो मधुपायसम् ।
लक्ष्मणश्च मया दृष्टो दिधक्षुः सर्वतो दिशम् ॥ ७० ॥

'इसी तरह मैंने लक्ष्मणको भी देखा है। वे हड्डियोंके ढेर-पर बैठे हुए मधुमिश्रित खीर खा रहे थे और ऐसा जान पड़ता था, मानो वे समस्त दिशाओंको दग्ध कर देना चाहते हैं ॥ ७० ॥

रुदती रुधिरार्द्राङ्गी व्याघ्रेण परिरक्षिता ।
असकृत् त्वं मया दृष्टा गच्छन्ती दिशमुत्तराम् ॥ ७१ ॥

'सपनेमें मैंने तुमको भी कई बार देखा। तुम्हारे सारे अङ्ग खूनसे तर हो रहे थे। तुम रोती हुई उत्तर दिशाकी ओर जा रही थीं और एक व्याघ्र तुम्हारी रक्षा कर रहा था ॥

हर्षमेष्यसि वैदेहि क्षिप्रं भर्त्रा समन्विता ।
राघवेण सह भ्रात्रा सीते त्वमचिरादिव ॥ ७२ ॥

'विदेहनन्दिनी सीते! इस सपनेसे यही प्रतीत होता है कि तुम शीघ्र ही अपने स्वामीसे मिलकर हर्षका अनुभव करोगी। भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीसे तुम्हारी अवश्य भेंट होगी; इसमें अब अधिक विलम्ब नहीं है' ॥ ७२ ॥

इत्येतन्मृगशावाक्षी तच्छ्रुत्वा त्रिजटावचः ।
बभूवाशावती बाला पुनर्भर्तृसमागमे ॥ ७३ ॥

त्रिजटाकी यह बात सुनकर मृगशावक-से नेत्रोंवाली सीताको पुनः पतिदेवसे मिलनेकी आशा बँध गयी ॥ ७३ ॥

यावदभ्यागता रौद्राः पिशाच्यस्ताः सुदारुणाः ।
ददृशुस्तां त्रिजटया सहासीनां यथा पुरा ॥ ७४ ॥

इतनेमेंही अत्यन्त क्रूर स्वभाववाली वे भयंकर पिशाचिनियाँ रावणके दरबारसे वहाँ लौट आयीं। आकर उन्होंने देखा, सीता त्रिजटाके साथ पूर्ववत् अपने स्थानपर बैठी है ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि त्रिजटाकृतसीतासान्त्वने अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें त्रिजटाद्वारा सीताको आश्वासनविषयक दो सौ अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८० ॥

एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रावण और सीताका संवाद

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तां भर्तृशोकार्तां दीनां मलिनवाससम् ।
मणिशेषाभ्यलङ्कारां रुदतीं च पतिव्रताम् ॥ १ ॥
राक्षसीभिरुपास्यन्तीं समासीनां शिलातले ।
रावणः कामबाणार्तो ददर्शोपससर्प च ॥ २ ॥
देवदानवगन्धर्वयक्षकिम्पुरुषैर्युधि ।
अजितोऽशोकवनिकां ययौ कन्दर्पपीडितः ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! तदनन्तर एक दिन जब पतिव्रता सीता स्वामीके वियोगके दुःखसे पीड़ित हो मैले कपड़े पहने केवल चूड़ामणिमात्र आभूषण धारण किये राक्षसियों-से घिरी हुई एक शिलापर बैठी दीनभावसे रो रही थीं, उसी समय देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष और किम्पुरुष किसीसे कभी युद्धमें परास्त न होनेवाला रावण कामबाणसे पीड़ित हो अशोकवाटिकामें गया। वहाँ उसने सीताको देखा और कामवेदनासे व्यथित होकर वह उनके समीप चला गया ॥ १-३ ॥

दिव्याम्बरधरः श्रीमान् सुमृष्टमणिकुण्डलः ।
विचित्रमाल्यमुकुटो वसन्त इव मूर्तिमान् ॥ ४ ॥

रावणने दिव्य वस्त्र धारण कर रक्खे थे। उसके कानोंमें सुन्दर मणिमय कुण्डल झलक रहे थे। वह विचित्र माला और मुकुट पहने मूर्तिमान् वसन्तके समान शोभासम्पन्न जान पड़ता था ॥ ४ ॥

न कल्पवृक्षसदृशो यत्नादपि विभूषितः।
श्मशानचैत्यद्रुमवद् भूषितोऽपि भयंकरः॥ ५॥

उसने बड़े यत्नसे अपने आपको वस्त्राभूषणोंद्वारा सजा रक्खा था, तो भी कल्पवृक्षके समान आह्लादजनक नहीं जान पड़ता था; अपितु श्मशानभूमिके चैत्यवृक्षकी भाँति भूषित होनेपर भी भयानक प्रतीत होता था॥ ५॥

स तस्यास्तनुमध्यायाः समीपे रजनीचरः।
ददृशे रोहिणीमेत्य शनैश्चर इव ग्रहः॥ ६॥

सूक्ष्म कटिप्रदेशवाली सीताके समीप खड़ा हुआ वह राक्षस रोहिणी नक्षत्रके निकट पहुँचे हुए शनैश्चर ग्रहके समान भयंकर दिखायी देता था॥ ६॥

स तामामन्त्र्य सुश्रोणीं पुष्पकेतुशराहतः।
इदमित्यब्रवीद् वाक्यं त्रस्तां रौहीमिवाबलाम्॥ ७॥

कामदेवके बाणोंसे घायल हुआ रावण मृगीके समान भयभीत हुई उस सुन्दरी अबलाको सम्बोधित करके इस प्रकार बोला—॥ ७॥

सीते पर्याप्तमेतावत् कृतो भर्तुरनुग्रहः।
प्रसादं कुरु तन्वङ्गि क्रियतां परिकर्म ते॥ ८॥

'सीते! आजतक तुमने जो अपने पतिपर इतना अनुग्रह दिखाया, यह बहुत हुआ। तन्वङ्गि! अब मुझपर कृपा करो, जिससे तुम्हें शृङ्गार धारण कराया जाय॥ ८॥

भजस्व मां वरारोहे महार्हाभरणाम्बरा।
भव मे सर्वनारीणामुत्तमा वरवर्णिनी॥ ९॥

'वरारोहे! मुझे अङ्गीकार करो और बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे भूषित हो मेरी सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ तथा सुन्दरी पटरानी बनो॥ ९॥

सन्ति मे देवकन्याश्च गन्धर्वाणां च योषितः।
सन्ति दानवकन्याश्च दैत्यानां चापि योषितः॥ १०॥

'मेरे महलमें देवताओंकी कन्याएँ, गन्धर्वोंकी युवती स्त्रियाँ, दानवकिशोरियाँ तथा दैत्योंकी रमणियाँ मेरी भार्याओंके रूपमें विद्यमान हैं॥ १०॥

चतुर्दश पिशाचानां कोट्यो मे वचने स्थिताः।
द्विस्तावत् पुरुषादानां रक्षसां भीमकर्मणाम्॥ ११॥

'चौदह करोड़ पिशाच मेरी आज्ञाके अधीन रहते हैं। इनसे दूने नरभक्षी राक्षस मेरे सेवक हैं, जो अत्यन्त भयंकर कर्म करनेवाले हैं॥ ११॥

ततो मे त्रिगुणा यक्षा ये मद्वचनकारिणः।
केचिदेव धनाध्यक्षं भ्रातरं मे समाश्रिताः॥ १२॥

'इनकी अपेक्षा तिगुनी संख्या मेरे आज्ञापालक यक्षोंकी है। यक्षोंमेंसे कुछ ही मेरे भाई धनाध्यक्ष कुबेरकी सेवामें रहते हैं॥ १२॥

गन्धर्वाप्सरसो भद्रे मामापानगतं सदा।
उपतिष्ठन्ति वामोरु यथैव भ्रातरं मम॥ १३॥

'भद्रे! वामोरु! जब मैं मधुपानकी गोष्ठीमें बैठता हूँ, उस समय मेरे भाईकी ही भाँति मेरी सेवामें भी गन्धर्वोंसहित अप्सराएँ उपस्थित होती हैं॥ १३॥

पुत्रोऽहमपि विप्रर्षेः साक्षाद् विश्रवसो मुनेः।
पञ्चमो लोकपालानामिति मे प्रथितं यशः॥ १४॥

'मैं भी कुबेरके ही समान साक्षात् ब्रह्मर्षि विश्रवा मुनिका पुत्र हूँ। (इन्द्र, यम, वरुण और कुबेर—इन चार लोकपालोंके सिवा) पाँचवें लोकपालके रूपमें मेरा सुयश सर्वत्र फैला हुआ है॥ १४॥

दिव्यानि भक्ष्यभोज्यानि पानानि विविधानि च।
यथैव त्रिदशेशस्य तथैव मम भामिनि॥ १५॥

'भामिनि! देवराज इन्द्रकी भाँति मुझे भी दिव्य भक्ष्य-भोज्य पदार्थ तथा नाना प्रकारके पेय रस उपलब्ध होते हैं॥ १५॥

क्षीयतां दुष्कृतं कर्म वनवासकृतं तव।
भार्या मे भव सुश्रोणि यथा मन्दोदरी तथा॥ १६॥

'सुश्रोणि! वनवासका कष्ट प्रदान करनेवाले तुम्हारे पूर्वकृत दुष्कर्मकी समाप्ति हो जानी चाहिये; इसके लिये तुम मन्दोदरीकी भाँति मेरी भार्या हो जाओ'॥ १६॥

इत्युक्ता तेन वैदेही परिवृत्य शुभानना।
तृणमन्तरतः कृत्वा तमुवाच निशाचरम्॥ १७॥
अशिवेनातिवामोरूरजस्रं नेत्रवारिणा।
स्तनावपतितौ बाला संहतावभिवर्षती॥ १८॥
उवाच वाक्यं तं क्षुद्रं वैदेही पतिदेवता।

रावणके ऐसा कहनेपर परम सुन्दर आँखोंसे सुशोभित, पतिको ही देवता माननेवाली विदेहराजकुमारी सुमुखी सीता अपना मुँह फेरकर बीचमें तिनकेकी ओट करके राक्षसोंके लिये अमङ्गलसूचक आँसुओंद्वारा अपने पीन एवं उन्नत स्तनोंको निरन्तर भिगोती हुई उस नीच निशाचरसे इस प्रकार बोलीं—॥ १७-१८½॥

असकृद् वदतो वाक्यमीदृशं राक्षसेश्वर॥ १९॥
विषादयुक्तमेतत् ते मया श्रुतमभाग्यया।
तद् भद्रमुख भद्रं ते मानसं विनिवर्त्यताम्॥ २०॥

'राक्षसराज! तुम्हारे मुखसे ऐसी दुःखदायिनी बातें अनेक बार निकली हैं और मुझ अभागिनीको वे न्यारी बातें बार-बार सुननी पड़ी हैं। भद्रमुख! तुम्हारा भला हो। तुम अपना मन मेरी ओरसे हटा लो॥ १९-२०॥

परदारास्म्यलभ्या च सततं च पतिव्रता।
न चैवौपयिकी भार्या मानुषी कृपणा तव॥ २१॥

'मैं पराची स्त्री हूँ, पतिव्रता हूँ। तुम कभी किसी तरह मुझे नहीं पा सकते। एक दीन मानवकन्या होनेके कारण मैं तुम-जैसे निशाचरकी भार्या होने योग्य नहीं हूँ ॥ २१ ॥

विवशां धर्षयित्वा च कां त्वं प्रीतिमवाप्स्यसि।
प्रजापतिसमो विप्रो ब्रह्मयोनिः पिता तव ॥ २२ ॥

'मुझ विवश अबलाको बलपूर्वक अपमानित करके तुम्हें क्या सुख मिलेगा? तुम्हारे पिता ब्राह्मण हैं। ब्रह्मासे उत्पन्न होनेके कारण वे ब्रह्माके ही समान हैं ॥ २२ ॥

न च पालयसे धर्मं लोकपालसमः कथम्।
भ्रातरं राजराजानं महेश्वरसखं प्रभुम् ॥ २३ ॥
धनेश्वरं व्यपदिशन् कथं त्विह न लज्जसे।

'तुम भी लोकपालोंके समान हो, फिर धर्मका पालन क्यों नहीं करते? महेश्वरके सखा राजराज धनाध्यक्ष प्रभु कुबेरको अपना भाई बता रहे हो, तो भी यहाँ ऐसा बर्ताव करते हुए तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आती?' ॥ २३½ ॥

इत्युक्त्वा प्रारुदत् सीता कम्पयन्ती पयोधरौ॥ २४ ॥
शिरोधरां च तन्वङ्गी मुखं प्रच्छाद्य वाससा।

ऐसा कहकर तन्वङ्गी सीता अपनी गर्दन और मुखको कपड़ेसे ढककर फूट-फूटकर रोने लगीं। उस समय छाती धड़कनेके कारण उनके स्तन काँप रहे थे ॥ २४½ ॥

तस्या रुदत्या भामिन्या दीर्घा वेणी सुसंयता ॥ २५ ॥
ददृशे स्वसिता स्निग्धा काली व्यालीव मूर्धनि।

अच्छी तरह रोती हुई भामिनी सीताके मस्तकपर बँधी हुई स्निग्ध, असित एवं विशाल वेणी काली नागिनके समान दिखायी देती थी ॥२५½॥

श्रुत्वा तद् रावणो वाक्यं सीतयोक्तं सुनिष्ठुरम्॥ २६ ॥
प्रत्याख्यातोऽपि दुर्मेधाः पुनरेवाब्रवीद् वचः।
काममङ्गानि मे सीते दुनोतु मकरध्वजः॥ २७ ॥
न त्वामकामां सुश्रोणीं समेष्ये चारुहासिनीम्।

सीताके मुखसे यह अत्यन्त निष्ठुर वचन सुनकर और उनके द्वारा कोरा उत्तर पाकर भी दुर्बुद्धि रावण पुनः इस प्रकार कहने लगा—'सीते! भले ही कामदेव मेरे शरीरको पीड़ा देता रहे, परंतु मैं तुम-जैसी मनोहर-मुस्कानवाली सुन्दरी युवतीको राजी किये बिना तुम्हारे साथ समागम नहीं करूँगा ॥२६-२७½ ॥

किं नु शक्यं मया कर्तुं यत् त्वमद्यापि मानुषम्॥ २८ ॥
आहारभूतमस्माकं राममेवानुरुध्यसे ॥ २९ ॥

'तुम आज भी उस मनुष्य रामके प्रति ही, जो हम लोगोंका आहार है, अनुराग दिखाती जा रही हो; ऐसी दशामें मैं क्या कर सकता हूँ?' ॥ २८-२९ ॥

इत्युक्त्वा तामनिन्द्याङ्गीं स राक्षसमहेश्वरः।
तत्रैवान्तर्हितो भूत्वा जगामाभिमतां दिशम् ॥ ३० ॥

अनिन्द्य अङ्गोंवाली सीतासे ऐसा कहकर राक्षसराज रावण वहीं अन्तर्धान हो अभीष्ट दिशाकी ओर चल दिया ॥ ३० ॥

राक्षसीभिः परिवृता वैदेही शोककर्शिता।
सेव्यमाना त्रिजटया तत्रैव न्यवसत् तदा ॥ ३१ ॥

इधर शोकसे दुबली हुई सीता राक्षसियोंसे घिरकर त्रिजटासे सुसेवित हो अशोकवाटिकामें ही रहने लगीं ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि सीतारावणसंवादे एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें सीतारावणसंवादविषयक दो सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८१ ॥

द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीरामका सुग्रीवपर कोप, सुग्रीवका सीताकी खोजमें वानरोंको भेजना तथा श्रीहनुमान्‌जीका लौटकर अपनी लङ्कायात्राका वृत्तान्त निवेदन करना

मार्कण्डेय उवाच

राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवेणाभिपालितः।
वसन् माल्यवतः पृष्ठे ददर्श विमलं नभः ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इधर श्रीराम और लक्ष्मण सुग्रीवसे सुरक्षित हो माल्यवान् पर्वतके पृष्ठभाग-पर रहने लगे। कुछ कालके अनन्तर जब वर्षाऋतु बीत गयी, तब उन्हें आकाश निर्मल दिखायी दिया ॥ १ ॥

स दृष्ट्वा विमले व्योम्नि निर्मलं शशलक्षणम्।
ग्रहनक्षत्रताराभिरनुयातममित्रहा ॥ २ ॥
कुमुदोत्पलपद्मानां गन्धमादाय वायुना।
महीधरस्थः शीतेन सहसा प्रतिबोधितः ॥ ३ ॥

शरद्ऋतुके निर्मल आकाशमें ग्रह, नक्षत्र तथा ताराओं-सहित विमल चन्द्रमाका दर्शन करके शत्रुसंहारक श्रीराम अभी पर्वतपर सोये ही थे कि कुमुद, उत्पल और पद्मोंकी सुगन्ध लेकर बहती हुई शीतल एवं सुखद वायुने उन्हें सहसा जगा दिया ॥ २–३ ॥

प्रभाते लक्ष्मणं वीरमभ्यभाषत दुर्मनाः।
सीतां संस्मृत्य धर्मात्मा रुद्धां राक्षसवेश्मनि ॥ ४ ॥

धर्मात्मा श्रीरामको प्रातःकाल राक्षसके भवनमें कैद हुई

अपनी पत्नी सीताका स्मरण हो आया और वे खिन्नचित्त होकर धीरवर लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले—॥ ४ ॥

गच्छ लक्ष्मण जानीहि किष्किन्धायां कपीश्वरम् ।
प्रमत्तं ग्राम्यधर्मेषु कृतघ्नं स्वार्थपण्डितम् ॥ ५ ॥

'लक्ष्मण ! जाओ और पता लगाओ कि किष्किन्धामें वानरराज सुग्रीव क्या कर रहा है ? जान पड़ता है, स्वार्थ-साधनकी कलामें पण्डित कृतघ्न सुग्रीव विषयभोगोंमें आसक्त हो अपने कर्तव्यको भूल गया है ॥ ५ ॥

योऽसौ कुलाधमो मूढो मया राज्येऽभिषेचितः ।
सर्ववानरगोपुच्छा यमृक्षाश्च भजन्ति वै ॥ ६ ॥

'उस वानरकुलकलंक मूर्खको मैंने ही राज्यपर अभिषिक्त किया है । इसके कारण सम्पूर्ण वानर, लंगूर तथा रीछ उसकी सेवा करते हैं ॥ ६ ॥

यदर्थं निहतो वाली मया रघुकुलोद्वह ।
त्वया सह महाबाहो किष्किन्धोपवने तदा ॥ ७ ॥

'रघुकुलतिलक महाबाहु लक्ष्मण ! इसी सुग्रीवके लिये उन दिनों मैंने तुम्हारे साथ किष्किन्धाके उद्यानमें जाकर वालीका वध किया था ॥ ७ ॥

कृतघ्नं तमहं मन्ये वानरापसदं भुवि ।
यो मामेवंगतो मूढो न जानीतेऽद्य लक्ष्मण ॥ ८ ॥

'सुमित्रानन्दन ! मैं तो उस नीच वानरको इस भूतलपर कृतघ्न मानता हूँ, क्योंकि वह मूर्ख इस अवस्थामें पहुँचकर मुझे भूल गया है ॥ ८ ॥

असौ मन्ये न जानीते समयप्रतिपालनम् ।
कृतोपकारं मां नूनमवमन्याल्पया धिया ॥ ९ ॥

'मैं तो समझता हूँ, वह अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करना नहीं जानता और अपनी मन्दबुद्धिके कारण मुझ उपकारीकी भी वह निश्चय ही अवहेलना कर रहा है ॥ ९ ॥

यदि तावदनुद्युक्तः शेते कामसुखात्मकः ।
नेतव्यो वालिमार्गेण सर्वभूतगतिं त्वया ॥ १० ॥

'यदि वह विषयसुखमें ही आसक्त हो सीताकी खोजके लिये कुछ उद्योग न कर रहा हो, तो उसे भी तुम वालीके मार्गसे उसी लोकको पहुँचा देना, जहाँ एक-न-एक दिन सभी प्राणियोंको जाना पड़ता है ॥ १० ॥

अथापि घटतेऽस्माकमर्थे वानरपुङ्गवः ।
तमादायैव काकुत्स्थ त्वरावान् भव मा चिरम् ॥ ११ ॥

'लक्ष्मण ! यदि वानरराज हमारे कार्यके लिये कुछ चेष्टा कर रहा हो, तो उसे साथ लेकर तुरंत लौट आना, देर न लगाना' ॥

इत्युक्तो लक्ष्मणो भ्रात्रा गुरुवाक्यहिते रतः ।
प्रतस्थे रुचिरं गृह्य समार्गणगुणं धनुः ॥ १२ ॥

भाईके ऐसा कहनेपर गुरुजनोंकी आज्ञाके पालन तथा हिताचरणमें तत्पर रहनेवाले लक्ष्मण बाण और प्रत्यञ्चा-सहित सुन्दर धनुष हाथमें लेकर वहाँसे चल दिये ॥ १२ ॥

किष्किन्धाद्वारमासाद्य प्रविवेशानिवारितः ।
सक्रोध इति तं मत्वा राजा प्रत्युद्ययौ हरिः ॥ १३ ॥

किष्किन्धाके द्वारपर पहुँचकर वे बेरोक-टोक भीतर घुस गये । लक्ष्मण क्रोधमें भरे हुए आ रहे हैं, यह जानकर राजा सुग्रीव उनकी अगवानीके लिये आगे बढ़ आया ॥ १३ ॥



तं सदारो विनीतात्मा सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
पूजया प्रतिजग्राह प्रीयमाणस्तदर्हया ॥ १४ ॥
तमब्रवीद् रामवचः सौमित्रिरकुतोभयः ।

पत्नीसहित वानरराज सुग्रीव विनीतभावसे लक्ष्मणजीकी पूजा करके उन्हें साथ लिवा ले गये । किसीसे भी भय न माननेवाले सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने उस पूजा (आदर-सत्कार) से प्रसन्न हो उनसे श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं ॥ १४½ ॥

स तत् सर्वमशेषेण श्रुत्वा प्रह्वः कृताञ्जलिः ॥ १५ ॥
सभृत्यदारो राजेन्द्र सुग्रीवो वानराधिपः ।
इदमाह वचः प्रीतो लक्ष्मणं नरकुञ्जरम् ॥ १६ ॥

राजेन्द्र ! वह सब कुछ पूरा-पूरा सुनकर नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े हुए भार्या तथा सेवकोंसहित वानरराज सुग्रीवने नरश्रेष्ठ लक्ष्मणसे सहर्ष निवेदन किया—॥ १५-१६ ॥

नास्मि लक्ष्मण दुर्मेधा नाकृतज्ञो न निर्घृणः ।
श्रूयतां यः प्रयत्नो मे सीतापर्येषणे कृतः ॥ १७ ॥

'लक्ष्मण ! मैं न तो दुर्बुद्धि हूँ, न अकृतज्ञ हूँ और न निर्दय ही हूँ । मैंने सीताकी खोजके लिये जो प्रयत्न किया है, उसे सुनिये ॥ १७ ॥

दिशः प्रस्थापिताः सर्वे विनीता हरयो मया ।
सर्वेषां च कृतः कालो मासेनागमनं पुनः ॥१८॥

'मैंने सब दिशाओंमें सभी विनयशील वानरोंको भेज दिया है और उन सबके लिये एक महीनेके अंदर ही लौट आनेका समय निश्चित कर दिया है ॥ १८ ॥

यैरियं सवना साद्रिः सपुरा सागराम्बरा ।
विचेतव्या मही वीर सग्रामनगराकरा ॥१९॥

'वीर ! वे सब लोग वन, पर्वत, पुर, ग्राम, नगर तथा आकरोंसहित समुद्रवसना इस सारी पृथ्वीपर सीताकी खोज करेंगे ॥ १९ ॥

स मासः पञ्चरात्रेण पूर्णो भवितुमर्हति ।
ततः श्रोष्यसि रामेण सहितः सुमहत् प्रियम् ॥ २०॥

'वह एक मास, जिसके समाप्त होनेतक वानरोंको लौट आना है, पाँच रातमें पूरा हो जायगा । तत्पश्चात् आप रामचन्द्रजीके साथ सीताका अत्यन्त प्रिय समाचार सुनेंगे' ॥ २० ॥

इत्युक्तो लक्ष्मणस्तेन वानरेन्द्रेण धीमता ।
त्यक्त्वा रोषमदीनात्मा सुग्रीवं प्रत्यपूजयत् ॥ २१॥

बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवके ऐसा कहनेपर उदार हृदयवाले लक्ष्मणने रोष त्यागकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २१ ॥

स रामं सहसुग्रीवो माल्यवत्पृष्ठमास्थितम् ।
अभिगम्योदयं तस्य कार्यस्य प्रत्यवेदयत् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् वे सुग्रीवको साथ लेकर माल्यवान् पर्वतके पृष्ठभागमें रहनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके पास गये । वहाँ उन्होंने बताया कि सीताका अनुसंधानकार्य आरम्भ हो गया है ॥ २२ ॥

इत्येवं वानरेन्द्रास्ते समाजग्मुः सहस्रशः ।
दिशस्तिस्रो विचित्याथ न तु ये दक्षिणां गताः ॥ २३ ॥

इसके बाद मास पूर्ण होनेपर तीन दिशाओंकी खोज करके सहस्रों वानरप्रमुख वहाँ आये । केवल वे ही नहीं आये, जो दक्षिण दिशामें पता लगाने गये थे ॥ २३ ॥

आचख्युस्तत्र रामाय महीं सागरमेखलाम् ।
विचितां न तु वैदेह्या दर्शनं रावणस्य वा ॥ २४ ॥

आये हुए वानरोंने श्रीरामचन्द्रजीसे बताया कि समुद्रसे घिरी हुई सारी पृथ्वी हमने देख डाली, परंतु कहीं भी सीता अथवा रावणका दर्शन नहीं हुआ ॥ २४ ॥

गतास्तु दक्षिणामाशां ये वै वानरपुङ्गवाः ।
आशावांस्तेषु काकुत्स्थः प्राणानार्तोऽभ्यधारयत् ॥२५॥

जो प्रमुख वानर दक्षिण दिशाकी ओर गये थे, उन्हींसे सीताका वास्तविक समाचार मिलनेकी आशा बँधी हुई थी, इसीलिये व्यथित होनेपर भी श्रीरामचन्द्रजी अपने प्राणोंको धारण किये रहे ॥ २५ ॥

द्विमासोपरमे काले व्यतीते प्लवगास्ततः ।
सुग्रीवमभिगम्येदं त्वरिता वाक्यमब्रुवन् ॥ २६ ॥

दो मास व्यतीत हो जानेपर कुछ वानर बड़ी उतावलीके साथ सुग्रीवके पास आये और इस प्रकार कहने लगे— ॥ २६ ॥

रक्षितं वालिना यत् तत् स्फीतं मधुवनं महत् ।
त्वया च प्लवगश्रेष्ठ तद् भुङ्क्ते पवनात्मजः ॥ २७ ॥

'वानरराज ! वालीने तथा आपने भी जिस समृद्धिशाली महान् मधुवनकी रक्षा की थी, उसे पवननन्दन हनुमान्‌जी (राजाज्ञाके बिना ही) अपने उपभोगमें ला रहे हैं ॥ २७ ॥

वालिपुत्रोऽङ्गदश्चैव ये चान्ये प्लवगर्षभाः ।
विचेतुं दक्षिणामाशां राजन् प्रस्थापितास्त्वया ॥ २८ ॥

'राजन् ! उनके साथ वालिपुत्र अङ्गद तथा अन्य सभी श्रेष्ठ वानर इस काममें भाग ले रहे हैं, जिन्हें आपने दक्षिण दिशामें सीताजीकी खोजके लिये भेजा था' ॥ २८ ॥

तेषामपनयं श्रुत्वा मेने स कृतकृत्यताम् ।
कृतार्थानां हि भृत्यानामेतद् भवति चेष्टितम् ॥ २९ ॥

उन वानरोंके अनुचित बर्तावका समाचार सुनकर सुग्रीवको यह विश्वास हो गया कि वे सब काम पूरा करके लौटे हैं; क्योंकि ऐसी धृष्टतापूर्ण चेष्टा उन्हीं सेवकोंकी होती है जो अपने कार्यमें सफल हो जाते हैं ॥ २९ ॥

स तद् रामाय मेधावी शशंस प्लवगर्षभः ।
रामश्चाप्यनुमानेन मेने दृष्टां तु मैथिलीम् ॥ ३० ॥

बुद्धिमान् वानरप्रवर सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीसे अपना निश्चय बताया । श्रीरामचन्द्रजीने भी अनुमानसे यह मान लिया कि उन वानरोंने अवश्य ही मिथिलेशकुमारी सीताका दर्शन किया होगा ॥ ३० ॥

हनुमत्प्रमुखाश्चापि विश्रान्तास्ते प्लवङ्गमाः ।
अभिजग्मुर्हरीन्द्रं तं रामलक्ष्मणसंनिधौ ॥ ३१ ॥

हनुमान् आदि श्रेष्ठ वानर विश्राम कर लेनेके पश्चात् श्रीराम और लक्ष्मणके समीप बैठे हुए उन वानरराज सुग्रीवके पास गये ॥ ३१ ॥

गतिं च मुखवर्णं च दृष्ट्वा रामो हनूमतः ।
अगमत् प्रत्ययं भूयो दृष्टा सीतेति भारत ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर ! हनुमान्‌जीकी चाल-ढाल और मुखकी कान्ति

देखकर श्रीरामचन्द्रजीको यह विश्वास हो गया कि इन्होंने सीताको देखा है ॥ ३२ ॥

हनुमत्प्रमुखास्ते तु वानराः पूर्णमानसाः ।
प्रणेमुर्विधिवद् रामं सुग्रीवं लक्ष्मणं तथा ॥ ३३ ॥

सफलमनोरथ हुए हनुमान् आदि प्रमुख वानरोंने श्रीराम, सुग्रीव तथा लक्ष्मणको विधिपूर्वक प्रणाम किया ॥ ३३ ॥

तानुवाचागतान् रामः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
अपि मां जीवयिष्यध्वमपि वः कृतकृत्यता ॥ ३४ ॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने धनुष-बाण लेकर उन प्रणाम करते हुए वानरोंसे पूछा—'क्या तुमलोग सीताका अमृतमय समाचार सुनाकर मुझे जीवनदान दोगे ? क्या तुम लोगोंको अपने कार्यमें सफलता मिली है ? ॥ ३४ ॥

अपि राज्यमयोध्यायां कारयिष्याम्यहं पुनः ।
निहत्य समरे शत्रूनाहृत्य जनकात्मजाम् ॥ ३५ ॥

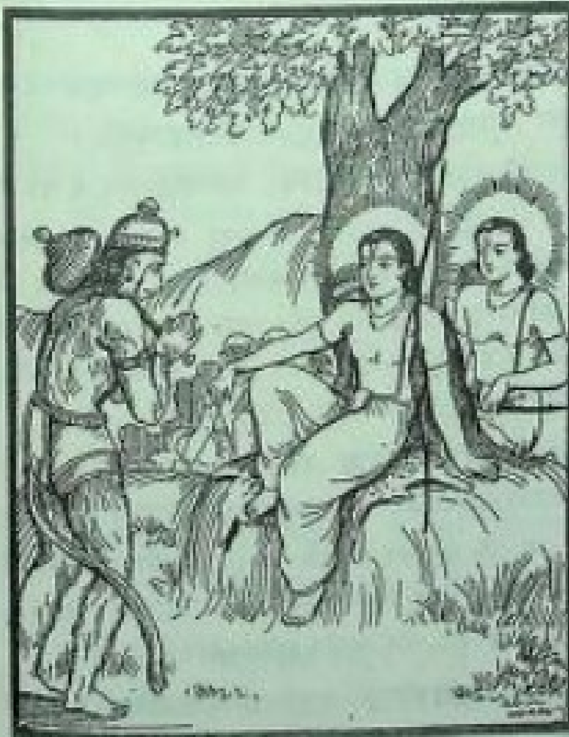
'क्या मैं युद्धमें शत्रुओंको मारकर जनकनन्दिनी सीताको साथ ले पुनः अयोध्यामें रहकर राज्य करूँगा ? ॥ ३५ ॥

अमोक्षयित्वा वैदेहीमहत्वा च रणे रिपून् ।
हृतदारोऽवधूतश्च नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ३६ ॥

'विदेहनन्दिनी सीताको बिना छुड़ाये तथा समरभूमिमें शत्रुओंका बिना संहार किये पत्नीको खोकर और अवधूत बनकर मैं जीवित नहीं रह सकता' ॥ ३६ ॥

इत्युक्तवचनं रामं प्रत्युवाचानिलात्मजः ।
प्रियमाख्यामि ते राम दृष्टा सा जानकी मया ॥ ३७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वायुपुत्र हनुमान्‌जीने



उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—'श्रीराम ! मैं आपको प्रिय समाचार सुना रहा हूँ । मैंने जनकनन्दिनी सीताका दर्शन किया है ॥ ३७ ॥

विचित्य दक्षिणामाशां सपर्वतवनाकराम् ।
श्रान्ताः काले व्यतीते स्म दृष्टवन्तो महागुहाम् ॥ ३८ ॥

'पर्वत, वन तथा आकरोंसहित सम्पूर्ण दक्षिण दिशामें श्रीसीताजीका अनुसंधान करके जब हमलोग थक गये और वहाँ लौटनेका समय व्यतीत हो गया, तब हमें एक बहुत बड़ी गुफा दिखायी दी ॥ ३८ ॥

प्रविशामो वयं तां तु बहुयोजनमायताम् ।
सान्धकारां सुविपिनां गहनां कीटसेविताम् ॥ ३९ ॥
गत्वा सुमहदध्वानमादित्यस्य प्रभां ततः ।
दृष्टवन्तः स्म तत्रैव भवनं दिव्यमन्तरा ॥ ४० ॥

'वह कई योजन लंबी थी । उसमें अन्धकार भरा हुआ था । उसके भीतर घने जंगल थे । उस गहन गुफामें बहुत-से कीड़े रहा करते थे । उसमें प्रवेश करके हमने बहुत दूरतकका रास्ता पार कर लिया । तत्पश्चात् सूर्यके प्रकाशका दर्शन हुआ । उसी गुफाके अंदर एक दिव्य भवन शोभा पा रहा था ॥ ३९-४० ॥

मयस्य किल दैत्यस्य तदासीद् वेश्म राघव ।
तत्र प्रभावती नाम तपोऽतप्यत तापसी ॥ ४१ ॥

'रघुनन्दन ! वह सुन्दर भवन दैत्यराज मयका निवास-स्थान बताया जाता है । उसमें प्रभावती नामकी एक तपस्विनी तप कर रही थी ॥ ४१ ॥

तया दत्तानि भोज्यानि पानानि विविधानि च ।
भुक्त्वा लब्धबलाः सन्तस्तयोक्तेन पथा ततः ॥ ४२ ॥
निर्याय तस्मादुद्देशात् पश्यामो लवणाम्भसः ।
समीपे सह्यमलयौ दर्दुरं च महागिरिम् ॥ ४३ ॥

'उसने हमें अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ तथा भाँति-भाँतिके पीने योग्य रस दिये । उन्हें खाकर हमें नूतन बल प्राप्त हुआ । फिर उसीके बताये हुए मार्गसे जब हम गुफासे बाहर निकले, तब हमें लवणसमुद्रके निकटवर्ती सह्य, मलय और दर्दुर नामक महान् पर्वत दिखायी दिये ॥ ४२-४३ ॥

ततो मलयमारुह्य पश्यन्तो वरुणालयम् ।
विषण्णा व्यथिताः खिन्ना निराशा जीविते भृशम् ॥ ४४ ॥

'फिर हमलोग मलयाचलपर चढ़कर समुद्रकी ओर देखने लगे । उसकी विशालता देखकर हमारा हृदय विषादसे भर गया । हम खिन्न और व्यथित हो गये । हमें जीवनकी कोई आशा न रही ॥ ४४ ॥

अनेकशतविस्तीर्णं योजनानां महोदधिम् ।
तिमिनक्रझषावासं चिन्तयन्तः सुदुःखिताः ॥ ४५ ॥

'उस महासागरका विस्तार कई सौ योजनोंमें था। उसमें तिमि, मगर और बड़े-बड़े मत्स्य निवास करते थे। उसके इस स्वरूपका स्मरण करके हम सब लोग बहुत दुखी हो गये ॥ ४५ ॥

तत्रानशनसंकल्पं कृत्वाऽऽसीना वयं तदा।
ततः कथान्ते गृध्रस्य जटायोरभवत् कथा ॥ ४६ ॥

'अन्तमें अनशन करके प्राण त्याग देनेका संकल्प लेकर हम सब लोग वहीं बैठ गये। फिर आपसमें बातचीत होने लगी और बीचमें जटायुका प्रसंग छिड़ गया ॥ ४६ ॥

ततः पर्वतशृङ्गाभं घोररूपं भयावहम्।
पक्षिणं दृष्टवन्तः स्म वैनतेयमिवापरम् ॥ ४७ ॥

'इतनेमें ही हमने दूसरे गरुड़की भाँति एक भयंकर पक्षीको देखा, जो पर्वतशिखरके समान जान पड़ता था। उसका स्वरूप बड़ा डरावना था ॥ ४७ ॥

सोऽस्मानतर्कयद् भोक्तुमथाभ्येत्य वचोऽब्रवीत्।
भोः क एष मम भ्रातुर्जटायोः कुरुते कथाम् ॥ ४८ ॥
सम्पातिर्नाम तस्याहं ज्येष्ठो भ्राता खगाधिपः।
अन्योन्यस्पर्धयारूढावावामादित्यसत्पदम् ॥ ४९ ॥

'वह पक्षी हमें खा जानेकी युक्ति सोचने लगा। फिर हमारे पास आकर बोला—'अजी! कौन मेरे भाई जटायुकी बात कर रहा था। मैं उसका बड़ा भाई पक्षिराज सम्पाति हूँ। हम दोनों एक दूसरेसे होड़ लगाकर आकाशमें सूर्यमण्डलतक पहुँचनेके लिये उड़े थे ॥ ४८-४९ ॥

ततो दग्धाविमौ पक्षौ न दग्धौ तु जटायुषः।
तदा मे चिरदृष्टः स भ्राता गृध्रपतिः प्रियः ॥ ५० ॥
निर्दग्धपक्षः पतितो ह्यहमस्मिन् महागिरौ।

'इससे मेरी ये दोनों पाँखें जल गयीं, परंतु जटायुके पंख नहीं जले। तबसे दीर्घकाल व्यतीत हो गया। उन्हीं दिनों मैंने अपने प्रिय भाई गृध्रराज जटायुको देखा था पंख जल जानेसे मैं इसी महान् पर्वतपर गिर पड़ा' ॥ ५०½ ॥

तस्यैवं वदतोऽस्माभिर्हतो भ्राता निवेदितः ॥ ५१ ॥
व्यसनं भवतश्चेदं संक्षेपाद् वै निवेदितम्।

'सम्पाति जब इस तरहकी बातें कर रहा था, उस समय हमलोगोंने बताया कि जटायु मारे गये। साथ ही हमने संक्षेपसे आपके ऊपर आये हुए इस संकटका समाचार भी निवेदन कर दिया ॥ ५१½ ॥

स सम्पातिस्तदा राजञ्छ्रुत्वा सुमहदप्रियम् ॥ ५२ ॥
विषण्णचेताः पप्रच्छ पुनरस्मानरिंदम।
कः स रामः कथं सीता जटायुश्च कथं हतः ॥ ५३ ॥
इच्छामि सर्वमेवैतच्छ्रोतुं प्लवगसत्तमाः।

'राजन्! यह अत्यन्त अप्रिय वृत्तान्त सुनकर उस सम्पातिके मनमें बड़ा खेद हुआ। शत्रुदमन! उसने पुनः हमलोगोंसे पूछा—'श्रेष्ठ वानरगण! वे श्रीराम कौन हैं, सीता कैसी हैं और जटायु किस प्रकार मारे गये? ये सब बातें मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ' ॥ ५२-५३½ ॥

तस्याहं सर्वमेवैतद् भवतो व्यसनागमम् ॥ ५४ ॥
प्रायोपवेशने चैव हेतुं विस्तरशोऽब्रुवम्।

'तब मैंने सम्पातिके समक्ष आपपर संकट आनेका यह सारा वृत्तान्त और अपने आमरण अनशनका कारण विस्तारपूर्वक बताया ॥ ५४½ ॥

सोऽस्मानुत्थापयामास वाक्येनानेन पक्षिराट् ॥ ५५ ॥
रावणो विदितो मह्यं लङ्का चास्य महापुरी।
दृष्टा पारे समुद्रस्य त्रिकूटगिरिकन्दरे ॥ ५६ ॥
भवित्री तत्र वैदेही न मेऽस्त्यत्र विचारणा।

'तब पक्षिराज सम्पातिने अपने निम्नाङ्कित वचनद्वारा हमें उत्साहित करके उठाया। 'वानरो! मैं रावणको जानता हूँ। उसकी महापुरी लङ्का भी मैंने देखी है। वह समुद्रके उस पार त्रिकूटगिरिकी कन्दरामें बसी है। विदेहकुमारी सीता अवश्य वहीं होंगी, इस विषयमें मुझे कोई अन्यथा विचार नहीं हो रहा है' ॥ ५५-५६½ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा वयमुत्थाय सत्वराः ॥ ५७ ॥
सागरक्रमणे मन्त्रं मन्त्रयामः परंतप।

परंतप! उसकी यह बात सुनकर हमलोग तुरंत उठे और समुद्र पार करनेके विषयमें परस्पर सलाह करने लगे ॥ ५७½ ॥

नाध्यवास्यद् यदा कश्चित् सागरस्य विलङ्घनम् ॥ ५८ ॥
ततः पितरमाविश्य पुप्लुवेऽहं महार्णवम्।
शतयोजनविस्तीर्णं निहत्य जलराक्षसीम् ॥ ५९ ॥

'जब कोई भी समुद्रको लाँघनेका साहस न कर सका तब मैं अपने पिता वायुके स्वरूपमें प्रविष्ट होकर वह सौ योजन विस्तृत महासागर लाँघ गया। उस समय समुद्रके जलमें एक राक्षसी रहती थी, जिसे अपने मार्गमें विघ्न डालनेपर मैंने मार डाला था ॥ ५८-५९ ॥

तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती।
उपवासतपःशीला भर्तृदर्शनलालसा ॥ ६० ॥

लङ्कामें पहुँचकर रावणके अन्तःपुरमें मैंने सती सीताका दर्शन किया, जो अपने पतिदेवताके दर्शनकी लालसासे निरन्तर उपवास और तपस्या किया करती हैं ॥ ६० ॥

जटिला मलदिग्धाङ्गी कृशा दीना तपस्विनी।
निमित्तैस्तामहं सीतामुपलभ्य पृथग्विधैः ॥ ६१ ॥

उपसृत्याब्रुवं चार्यामभिगम्य रहोगताम् ।
सीते रामस्य दूतोऽहं वानरो मारुतात्मजः ॥ ६२ ॥

'उनके केश जटाके रूपमें परिणत हो गये थे । अङ्ग-अङ्गमें मैल जम गयी थी । वे दीन, दुर्बल और तपस्विनी दिखायी देती थीं । कई भिन्न-भिन्न कारणोंसे उन्हें आर्या सीताके रूपमें पहचानकर मैं एकान्तमें उनके निकट गया और इस प्रकार बोला—'देवि सीते ! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत पवनपुत्र हनुमान् नामक वानर हूँ ॥ ६१-६२ ॥

त्वद्दर्शनमभिप्रेप्सुरिह प्राप्तो विहायसा ।
राजपुत्रौ कुशलिनौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ६३ ॥

'आपके दर्शनके लिये मैं आकाशमार्गसे यहाँ आया हूँ । दोनों भाई राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण कुशलसे हैं ॥ ६३ ॥

सर्वशाखामृगेन्द्रेण सुग्रीवेणाभिपालितौ ।
कुशलं त्वाब्रवीद् रामः सीते सौमित्रिणा सह ॥ ६४ ॥

'सम्पूर्ण वानरोंके अधीश्वर सुग्रीव इस समय उनकी रक्षामें तत्पर हैं । देवि ! सुमित्रानन्दन लक्ष्मणके साथ भगवान् श्रीरामने आपको अपने सकुशल होनेका समाचार कहलाया है ॥ ६४ ॥

सखिभावाच्च सुग्रीवः कुशलं त्वानुपृच्छति ।
क्षिप्रमेष्यति ते भर्ता सर्वशाखामृगैः सह ॥ ६५ ॥
प्रत्ययं कुरु मे देवि वानरोऽस्मि न राक्षसः ।

'उनके मित्र होनेके नाते सुग्रीव भी आपका कुशल-मङ्गल पूछते हैं । आपके स्वामी भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण वानरोंकी सेनाके साथ शीघ्र यहाँ पधारेंगे । देवि ! मेरा विश्वास कीजिये । मैं राक्षस नहीं, वानर हूँ' ॥ ६५½ ॥

मुहूर्तमिव च ध्यात्वा सीता मां प्रत्युवाच ह ॥ ६६ ॥
अवैमि त्वां हनूमन्तमविन्ध्यवचनादहम् ।
अविन्ध्यो हि महाबाहो राक्षसो वृद्धसम्मतः ॥ ६७ ॥

'तदनन्तर सीताने दो घड़ीतक कुछ सोचकर मुझसे इस प्रकार कहा—'महाबाहो ! मैं अविन्ध्यके कहनेसे यह विश्वास करती हूँ कि तुम हनुमान् हो । अविन्ध्य राक्षसकुलमें उत्पन्न होते हुए भी वृद्ध एवं आदरणीय हैं ॥ ६६-६७ ॥

कथितस्तेन सुग्रीवस्त्वद्विधैः सचिवैर्वृतः ।
गम्यतामिति चोक्त्वा मां सीता प्रादादिमं मणिम् ॥ ६८ ॥
धारिता येन वैदेही कालमेतमनिन्दिता ।
प्रत्ययार्थं कथां चेमां कथयामास जानकी ॥ ६९ ॥

'उन्होंने ही तुम्हारे-जैसे मन्त्रियोंसे युक्त सुग्रीवका परिचय दिया है । वत्स ! अब तुम भगवान् श्रीरामके पास जाओ ।' ऐसा कहकर सती साध्वी सीताने अपनी पहचानके लिये यह एक मणि दी, जिसको धारण करके वे अबतक अपने प्राणोंकी रक्षा करती आयी हैं । जानकीने विश्वास दिलानेके लिये यह एक कथा भी सुनायी थी— ॥ ६८-६९ ॥

क्षिप्तामिषीकां काकाय चित्रकूटे महागिरौ ।
भवता पुरुषव्याघ्र प्रत्यभिज्ञानकारणात् ॥ ७० ॥
(एकाक्षिविकलः काकः सुदुरात्मा कृतश्च वै ।)

'पुरुषसिंह ! उस कथाका मुख्य विषय यह है कि आपने महापर्वत चित्रकूटपर रहते समय किसी कौएके ऊपर एक सींकका बाण चलाया था और उस दुरात्मा कौएको एक आँखसे वञ्चित कर दिया था । यह प्रसङ्ग उन्होंने केवल अपनी पहचान करानेके उद्देश्यसे प्रस्तुत किया था ॥ ७० ॥

ग्राहयित्वाहमात्मानं ततो दग्ध्वा च तां पुरीम् ।
सम्प्राप्त इति तं रामः प्रियवादिनमार्चयत् ॥ ७१ ॥

'तदनन्तर मैंने जान-बूझकर अपने आपको राक्षसोंद्वारा पकड़वा दिया और लङ्कापुरीको जलाकर समुद्रके इस पार आ पहुँचा ।' यह सब समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने प्रियवादी हनुमान्‌का अत्यन्त आदर-सत्कार किया ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि हनुमत्प्रत्यागमने द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें हनुमान्‌जीके लङ्कासे लौटनेसे सम्बन्ध रखनेवाला दो सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७१½ श्लोक हैं)

त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वानर-सेनाका संगठन, सेतुका निर्माण, विभीषणका अभिषेक और लङ्काकी सीमामें सेनाका प्रवेश तथा अङ्गदको रावणके पास दूत बनाकर भेजना

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तत्रैव रामस्य समासीनस्य तैः सह ।
समाजग्मुः कपिश्रेष्ठाः सुग्रीववचनात् तदा ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! तदनन्तर सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार बड़े-बड़े वानरवीर माल्यवान् पर्वतपर लक्ष्मण आदिके साथ बैठे हुए भगवान् श्रीरामके पास पहुँचने लगे ॥

वृतः कोटिसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ।
श्वशुरो वालिनः श्रीमान् सुषेणो राममभ्ययात् ॥ २ ॥

सबसे पहले वालीके श्वशुर श्रीमान् सुषेण श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें उपस्थित हुए । उनके साथ वेगशाली वानरोंकी सहस्र कोटि (दस अरब) सेना थी ॥ २ ॥

कोटीशतवृतो वापि गजो गवय एव च ।
वानरेन्द्रौ महावीर्यौ पृथक् पृथगदृश्यताम् ॥ ३ ॥

फिर महापराक्रमी वानरराज 'गज' और 'गवय' पृथक्-पृथक् एक-एक अरब सेनाके साथ आते दिखायी दिये ॥ ३ ॥

षष्टिकोटिसहस्राणि प्रकर्षन् प्रत्यदृश्यत ।
गोलाङ्गूलो महाराज गवाक्षो भीमदर्शनः ॥ ४ ॥

महाराज ! गोलांगूल (लंगूर) जातिका वानर गवाक्ष, जो देखनेमें बड़ा भयंकर था, साठ सहस्र कोटि (छः खरब) वानर-सेना साथ लिये दृष्टिगोचर हुआ ॥ ४ ॥

गन्धमादनवासी तु प्रथितो गन्धमादनः ।
कोटीशतसहस्राणि हरीणां समकर्षत ॥ ५ ॥

गन्धमादन पर्वतपर रहनेवाला गन्धमादन नामसे विख्यात वानर वानरोंकी दस खरब सेना साथ लेकर आया ॥ ५ ॥

पनसो नाम मेधावी वानरः सुमहाबलः ।
कोटीर्दश द्वादश च त्रिंशत् पञ्च प्रकर्षति ॥ ६ ॥

पनस नामक बुद्धिमान् तथा महाबली वानर सत्तावन करोड़ सेना साथ लेकर आया ॥ ६ ॥

श्रीमान् दधिमुखो नाम हरिवृद्धोऽतिवीर्यवान् ।
प्रचकर्ष महासैन्यं हरीणां भीमतेजसाम् ॥ ७ ॥

वानरोंमें वृद्ध तथा अत्यन्त पराक्रमी श्रीमान् दधिमुख भयंकर तेजसे सम्पन्न वानरोंकी विशाल सेना साथ लेकर आये ॥ ७ ॥

कृष्णानां मुखपुण्ड्राणामृक्षाणां भीमकर्मणाम् ।
कोटीशतसहस्रेण जाम्बवान् प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥

जिनके मुख (ललाट) पर तिलकका चिह्न शोभा पा रहा था तथा जो भयंकर पराक्रम करनेवाले थे, ऐसे काले रंगके शतकोटि सहस्र (दस खरब) रीछोंकी सेनाके साथ वहाँ जाम्बवान् दिखायी दिये ॥ ८ ॥

एते चान्ये च बहवो हरियूथपयूथपाः ।
असंख्येया महाराज समीयू रामकारणात् ॥ ९ ॥

महाराज ! ये तथा और भी बहुत-से वानरयूथपतियोंके भी यूथपति, जिनकी कोई संख्या नहीं थी, श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे वहाँ एकत्र हुए ॥ ९ ॥

गिरिकूटनिभाङ्गानां सिंहानामिव गर्जताम् ।
श्रूयते तुमुलः शब्दस्तत्र तत्र प्रधावताम् ॥ १० ॥

उनके अङ्ग पर्वतोंके शिखरके सदृश जान पड़ते थे । वे सबके सब सिंहोंके समान गरजते और इधर-उधर दौड़ते थे । उन सबका सम्मिलित शब्द बड़ा भयंकर प्रतीत होता था ॥ १० ॥

गिरिकूटनिभाः केचित् केचिन्महिषसंनिभाः ।
शरदभ्रप्रतीकाशाः केचिद्धिङ्गुलकाननाः ॥ ११ ॥

कोई पर्वत-शिखरके समान ऊँचे थे, तो कोई भैंसोंके सदृश मोटे और काले । कितने ही वानर शरद् ऋतुके बादलोंकी तरह सफेद दिखायी देते थे, कितनोंके ही मुख सिन्दूरके समान लाल रंगके थे ॥ ११ ॥

उत्पतन्तः पतन्तश्च प्लवमानाश्च वानराः ।
उद्धुन्वन्तोऽपरे रेणून् समाजग्मुः समन्ततः ॥ १२ ॥

वे वानर सैनिक उछलते, गिरते-पड़ते, कूदते-फाँदते और धूल उड़ाते हुए चारों ओरसे एकत्र हो रहे थे ॥ १२ ॥

स वानरमहासैन्यः पूर्णसागरसंनिभः ।
निवेशमकरोत् तत्र सुग्रीवानुमते तदा ॥ १३ ॥

वानरोंकी यह विशाल सेना भरे-पूरे महासागरके समान दिखायी देती थी । सुग्रीवकी आज्ञासे उस समय माल्यवान् पर्वतके आस-पास ही उस समस्त सेनाका पड़ाव पड़ गया ॥ १३ ॥

ततस्तेषु हरीन्द्रेषु समावृत्तेषु सर्वशः ।
तिथौ प्रशस्ते नक्षत्रे मुहूर्ते चाभिपूजिते ॥ १४ ॥
तेन व्यूढेन सैन्येन लोकानुद्वर्तयन्निव ।
प्रययौ राघवः श्रीमान् सुग्रीवसहितस्तदा ॥ १५ ॥

तदनन्तर उन समस्त श्रेष्ठ वानरोंके सब ओरसे एकत्र हो जानेपर सुग्रीवसहित भगवान् श्रीरामने एक दिन शुभ तिथि, उत्तम नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमें युद्धके लिये प्रस्थान किया । उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो वे उस व्यूह-रचनायुक्त सेनाके द्वारा सम्पूर्ण लोकोंका संहार करने जा रहे हैं ॥ १४-१५ ॥

मुखमासीत् तु सैन्यस्य हनूमान् मारुतात्मजः ।
जघनं पालयामास सौमित्रिरकुतोभयः ॥ १६ ॥

उस सेनाके मुहानेपर वायुपुत्र हनुमान्जी विद्यमान थे । किसीसे भी भय न माननेवाले सुमित्रानन्दन लक्ष्मण उसके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहे थे ॥ १६ ॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ राघवौ तत्र जग्मतुः ।
वृतौ हरिमहामात्रैश्चन्द्रसूर्यौ ग्रहैरिव ॥ १७ ॥

दोनों रघुवंशी वीर श्रीराम और लक्ष्मण हाथोंमें गोहके चमड़ेके बने हुए दस्ताने पहने हुए थे । वे ग्रहोंसे घिरे हुए चन्द्रमा और सूर्यकी भाँति वानरजातीय मन्त्रियोंसे घिरे होकर चल रहे थे ॥ १७ ॥

प्रबभौ हरिसैन्यं तत् सालतालशिलायुधम् ।
सुमहच्छालिभवनं यथा सूर्योदयं प्रति ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख साल, ताल और शिलारूपी आयुध लिये वे समस्त वानर सैनिक सूर्योदयके समय पके हुए धानके विशाल खेतोंके समान जान पड़ते थे ॥ १८ ॥

नलनीलाङ्गदक्राथमैन्दद्विविदपालिता ।
ययौ सुमहती सेना राघवस्यार्थसिद्धये ॥ १९ ॥

नल, नील, अङ्गद, क्राथ, मैन्द तथा द्विविदके द्वारा सुरक्षित हुई वह विशाल वानरसेना श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करनेके लिये आगे बढ़ती चली जा रही थी ॥ १९ ॥

विविधेषु प्रशस्तेषु बहुमूलफलेषु च ।
प्रभूतमधुमूलेषु वारिमत्सु शिवेषु च ॥ २० ॥
निवसन्ती निराबाधा तथैव गिरिसानुषु ।
उपायाद्धरिसेना सा क्षारोदमथ सागरम् ॥ २१ ॥

जहाँ फल-मूलकी बहुतायत होती, मधु और कन्द-मूल प्रचुरमात्रामें उपलब्ध होते तथा जलकी अधिक सुविधा होती, ऐसे कल्याणकारी और उत्तम विविध पर्वतीय शिखरोंपर डेरा डालती हुई वह वानरसेना बिना किसी विघ्न-बाधाके खारे पानीवाले समुद्रके निकट जा पहुँची ॥ २०-२१ ॥

द्वितीयसागरनिभं तद् बलं बहुलध्वजम् ।
वेलावनं समासाद्य निवासमकरोत् तदा ॥ २२ ॥

असंख्य ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित वह विशाल वाहिनी दूसरे महासागरके समान जान पड़ती थी। सागरके तटवर्ती वनमें पहुँचकर उसने अपना पड़ाव डाला ॥ २२ ॥

ततो दाशरथिः श्रीमान् सुग्रीवं प्रत्यभाषत ।
मध्ये वानरमुख्यानां प्राप्तकालमिदं वचः ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् मुख्य-मुख्य वानरोंके बीचमें बैठे हुए दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने सुग्रीवसे यह समयोचित बात कही—॥ २३ ॥

उपायः को नु भवतां मतः सागरलङ्घने ।
इयं हि महती सेना सागरश्चातिदुस्तरः ॥ २४ ॥

'मित्रो ! हमारी यह सेना बहुत बड़ी है और सामने अत्यन्त दुस्तर महासागर लहरें ले रहा है। ऐसी दशामें आपलोग समुद्रके पार जानेके लिये कौन-सा उपाय ठीक समझते हैं ?' ॥ २४ ॥

तत्रान्ये व्याहरन्ति स्म वानरा बहुमानिनः ।
समर्था लङ्घने सिन्धोर्न तु तत् कृत्स्नकारकम् ॥ २५ ॥

तब वहाँ बहुत-से दूसरे-दूसरे वानर, जो बड़े अभिमानी थे, कहने लगे—'हम तो समुद्रको लाँघ जानेमें समर्थ हैं' 'परंतु सब नहीं लाँघ सकते' ॥ २५ ॥

केचिन्नौभिर्व्यवस्यन्ति केचिच्च विविधैः प्लवैः ।
नेति रामस्तु तान् सर्वान् सान्त्वयन् प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥

कुछ वानर बड़ी-बड़ी नावोंके द्वारा समुद्रके पार जानेका निश्चय प्रकट करने लगे। कुछने नाव-डोंगी आदि विविध साधनोंद्वारा पार जानेकी बात बतायी। परंतु श्रीरामचन्द्रजीने उनकी यह सलाह माननेसे इन्कार कर दिया और सबको सान्त्वना देते हुए कहा—॥ २६ ॥

शतयोजनविस्तारं न शक्ताः सर्ववानराः ।
क्रान्तुं तोयनिधिं वीरा नैषा वो नैष्ठिकी मतिः ॥ २७ ॥

'वीरो ! सभी वानरोंमें इतनी शक्ति नहीं है कि वे सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघ सकें; अतः तुम लोगोंका यह निर्णय सर्वमान्य सिद्धान्तके रूपमें ग्राह्य नहीं है ॥ २७ ॥

नावो न सन्ति सेनाया बह्व्यस्तारयितुं तथा ।
वणिजामुपघातं च कथमस्मद्विधश्चरेत् ॥ २८ ॥

'इतनी बड़ी सेनाको पार उतारनेके लिये हमलोगोंके पास अधिक नौकाएँ भी नहीं हैं। (यदि कहें, व्यापारियोंके जहाजोंसे काम लिया जाय, तो) मेरे-जैसा पुरुष अपने स्वार्थके लिये व्यापारियोंके व्यवसायको हानि कैसे पहुँचा सकता है ? ॥

विस्तीर्णं चैव नः सैन्यं हन्याच्छिद्रेषु वै परः ।
प्लवोडुपप्रतारश्च नैवात्र मम रोचते ॥ २९ ॥

'इसके सिवा नौका आदिसे यात्रा करनेपर हमारी सेना छिट-फुट होकर बहुत दूरतक फैल जायगी। उस दशामें अवसर पाकर शत्रु इसका नाश भी कर सकता है। इसीलिये डोंगी और नाव आदिपर बैठकर पार उतरनेकी बात मुझे ठीक नहीं जँचती है ॥ २९ ॥

अहं त्विमं जलनिधिं समारप्स्याम्युपायतः ।
प्रतिशेष्याम्युपवसन् दर्शयिष्यति मां ततः ॥ ३० ॥

'मैं तो किसी उपायसे इस समुद्रकी ही आराधना आरम्भ करूँगा। इसके तटपर अन्न-जल छोड़कर धरना दूँगा। इससे यह अवश्य मुझे दर्शन देगा तथा कोई मार्ग दिखायेगा ॥ ३० ॥

न चेद् दर्शयिता मार्गं धक्ष्याम्येनमहं ततः ।
महास्त्रैरप्रतिहतैरत्यग्निपवनोज्ज्वलैः ॥ ३१ ॥

'यदि यह स्वयं प्रकट होकर कोई मार्ग नहीं दिखायेगा, तो मैं अग्नि और वायुसे भी अधिक तेजस्वी तथा कभी न चूकनेवाले महान् दिव्यास्त्रोंद्वारा इसे जलाकर भस्म कर डालूँगा' ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा सह सौमित्रिरुपस्पृश्याथ राघवः ।
प्रतिशिश्ये जलनिधिं विधिवत् कुशसंस्तरे ॥ ३२ ॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीने आचमन करके समुद्रके तटपर कुशकी चटाई बिछाकर उसपर लेटकर विधिपूर्वक धरना दे दिया ॥ ३२ ॥

सागरस्तु ततः स्वप्ने दर्शयामास राघवम् ।
देवो नदनदीभर्ता श्रीमान् यादोगणैर्वृतः ॥ ३३ ॥

तब नदों और नदियोंके स्वामी श्रीमान् समुद्रदेवने जल-जन्तुओंके साथ प्रकट होकर स्वप्नमें श्रीरामचन्द्रजीको दर्शन दिया ॥ ३३ ॥

कौसल्यामातरित्येवमाभाष्य मधुरं वचः ।
इदमित्याह रत्नानामाकरैः शतशो वृतः ॥ ३४ ॥

वह सैकड़ों रत्नके आकरोंसे घिरा हुआ था । उसने 'कौसल्यानन्दन' कहकर श्रीरामको सम्बोधित किया और मधुर वाणीमें इस प्रकार कहा—॥ ३४ ॥

ब्रूहि किं ते करोम्यत्र साहाय्यं पुरुषर्षभ ।
ऐक्ष्वाको ह्यस्मि ते ज्ञातिरिति रामस्तमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

'नरश्रेष्ठ ! कहो, मैं यहाँ तुम्हारी क्या सहायता करूँ ? सगरपुत्रोंसे संवर्धित होनेके कारण मैं भी इक्ष्वाकुवंशीय तथा तुम्हारा भाई-बन्धु हूँ' । यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा—॥

मार्गमिच्छामि सैन्यस्य दत्तं नदनदीपते ।
येन गत्वा दशग्रीवं हन्यां पौलस्त्यपांसनम् ॥ ३६ ॥

'नद-नदीश्वर ! मैं अपनी सेनाके लिये तुम्हारे द्वारा दिया हुआ मार्ग चाहता हूँ, जिससे जाकर पुलस्त्यकुलाङ्गार दशमुख रावणको मार सकूँ ॥ ३६ ॥

यद्येवं याचतो मार्गं न प्रदास्यति मे भवान् ।
शरैस्त्वां शोषयिष्यामि दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ ३७ ॥

'यदि इस प्रकार याचना करनेपर तुम मुझे मार्ग न दोगे, तो मैं दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित बाणोंद्वारा तुम्हें सुखा दूँगा ॥

इत्येवं ब्रुवतः श्रुत्वा रामस्य वरुणालयः ।
उवाच व्यथितो वाक्यमिति बद्धाञ्जलिः स्थितः ॥ ३८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर वरुणालय समुद्र व्यथित हो उठा और खड़े हुए हाथ जोड़कर बोला—॥ ३८ ॥

नेच्छामि प्रतिघातं ते नास्मि विघ्नकरस्तव ।
शृणु चेदं वचो राम श्रुत्वा कर्तव्यमाचर ॥ ३९ ॥

'श्रीराम ! मैं तुम्हारा सामना करना नहीं चाहता और न मैं तुम्हारे मार्गमें विघ्न डालनेकी ही इच्छा रखता हूँ । मेरी यह बात सुनो और सुनकर जो कर्तव्य हो, उसे करो ॥ ३९ ॥

यदि दास्यामि ते मार्गं सैन्यस्य व्रजतोऽऽज्ञया ।
अन्येऽप्याज्ञापयिष्यन्ति मामेवं धनुषो बलात् ॥ ४० ॥

'यदि मैं इस समय तुम्हारी आज्ञासे तुम्हें और लङ्का जाती हुई तुम्हारी सेनाको मार्ग दे दूँगा, तो दूसरे लोग भी इसी प्रकार धनुषके बलसे मुझपर हुक्म चलाया करेंगे ॥ ४० ॥

अस्ति त्वत्र नलो नाम वानरः शिल्पिसम्मतः ।
त्वष्टुर्देवस्य तनयो बलवान् विश्वकर्मणः ॥ ४१ ॥

'तुम्हारी सेनामें एक नल नामक वानर है, जो शिल्पियोंके लिये भी आदरणीय है । बलवान् नल देवशिल्पी विश्वकर्माका पुत्र है ॥ ४१ ॥

स यत् काष्ठं तृणं वापि शिलां वा क्षेप्स्यते मयि ।
सर्वं तद् धारयिष्यामि स ते सेतुर्भविष्यति ॥ ४२ ॥

'वह अपने हाथसे उठाकर जो भी काठ, तिनका या पत्थर मेरे भीतर डाल देगा, वह सब मैं जलके ऊपर धारण किये रहूँगा । वही तुम्हारे लिये पुल हो जायगा' ॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वान्तर्हिते तस्मिन् रामो नलमुवाच ह ।
कुरु सेतुं समुद्रे त्वं शक्तो ह्यसि मतो मम ॥ ४३ ॥

ऐसा कहकर समुद्र अन्तर्धान हो गया । तत्पश्चात् श्रीरामने उठकर नलसे कहा—'तुम समुद्रपर एक पुल तैयार करो । मैं जानता हूँ, तुममें यह कार्य करनेकी शक्ति है' ॥ ४३ ॥

तेनोपायेन काकुत्स्थः सेतुबन्धमकारयत् ।
दशयोजनविस्तारमायतं शतयोजनम् ॥ ४४ ॥

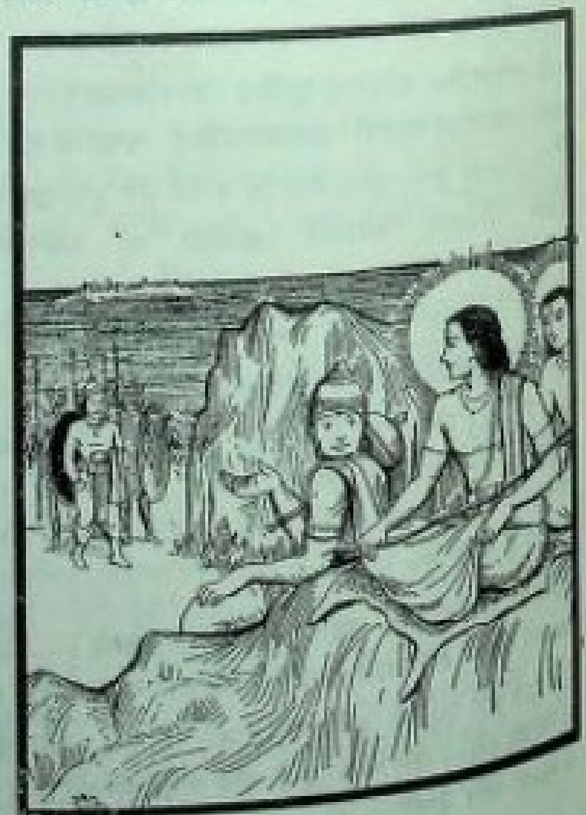
उसी उपायसे रघुनाथजीने समुद्रपर सौ योजन लंबा और दस योजन चौड़ा पुल तैयार कराया ॥ ४४ ॥

नलसेतुरिति ख्यातो योऽद्यापि प्रथितो भुवि ।
रामस्याज्ञां पुरस्कृत्य निर्यातो गिरिसंनिभः ॥ ४५ ॥

वह आज भी भूमण्डलमें 'नलसेतु' के नामसे विख्यात है। श्रीरामजीकी आज्ञा मानकर समुद्रने उस पर्वताकार पुलको अपने ऊपर धारण किया ॥ ४५ ॥

तत्रस्थं स तु धर्मात्मा समागच्छद् विभीषणः ।
भ्राता वै राक्षसेन्द्रस्य चतुर्भिः सचिवैः सह ॥ ४६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अभी समुद्रके किनारे ही थे कि राक्षसराज रावणके भाई धर्मात्मा विभीषण अपने चार मन्त्रियोंके साथ उनसे मिलनेके लिये आये ॥ ४६ ॥



प्रतिजग्राह रामस्तं स्वागतेन महामनाः ।
सुग्रीवस्य तु शङ्काभूत् प्रणिधिः स्यादिति स्म ह ॥ ४७ ॥

महामना श्रीरामने स्वागतपूर्वक उन्हें अपनाया। उस समय सुग्रीवके मनमें यह शङ्का हुई कि 'कहीं यह शत्रुका कोई गुप्तचर न हो' ॥ ४७ ॥

राघवः सत्यचेष्टाभिः सम्यक् च चरितेङ्गितैः ।
यदा तत्त्वेन तुष्टोऽभूत् तत एनमपूजयत् ॥ ४८ ॥

परंतु श्रीरामचन्द्रजीने उनकी सत्य चेष्टाओं, उत्तम आचरणों और मुख-नेत्र आदिके संकेतोंसे सूचित होनेवाले मनोभावोंकी सम्यक् समीक्षा करके जब अच्छी तरह संतोष प्राप्त कर लिया, तब विभीषणका बहुत आदर किया ॥ ४८ ॥

सर्वराक्षसराज्ये चाप्यभ्यषिञ्चद् विभीषणम् ।
चक्रे च मन्त्रसचिवं सुहृदं लक्ष्मणस्य च ॥ ४९ ॥

साथ ही उन्हें समस्त राक्षसोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और लक्ष्मणका सुहृद् तथा अपना सलाहकार बना लिया ॥

विभीषणमते चैव सोऽत्यक्रामन्महार्णवम् ।
ससैन्यः सेतुना तेन मासेनैव नराधिप ॥ ५० ॥

नरेश्वर ! विभीषणकी सलाहसे श्रीरामचन्द्रजीने उसी सेतुद्वारा एक ही महीनेमें सेनासहित महासागरको पार कर लिया ॥ ५० ॥

ततो गत्वा समासाद्य लङ्कोद्यानान्यनेकशः ।
भेदयामास कपिभिर्महान्ति च बहूनि च ॥ ५१ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने लङ्काकी सीमामें पहुँचकर वानरोंद्वारा वहाँके बहुत-से बड़े-बड़े उद्यानोंको छिन्न-भिन्न करा दिया ॥

तत्रास्तां रावणामात्यौ मन्त्रिणौ शुकसारणौ ।
चरौ वानररूपेण तौ जग्राह विभीषणः ॥ ५२ ॥

उस सेनामें वानरोंका रूप धारण करके रावणके दो मन्त्री शुक और सारण गुप्तचरका काम करनेके लिये घुस आये थे। विभीषणने उन दोनोंको पहचानकर कैद कर लिया ॥ ५२ ॥

प्रतिपन्नौ यदा रूपं राक्षसं तौ निशाचरौ ।
दर्शयित्वा ततः सैन्यं रामः पश्चादवासृजत् ॥ ५३ ॥

जब वे दोनों निशाचर अपने राक्षसरूपमें प्रकट हुए, तब श्रीरामने उन्हें अपनी सेनाका दर्शन कराकर छोड़ दिया ॥ ५३ ॥

निवेश्योपवने सैन्यं तत् पुरः प्राज्ञवानरम् ।
प्रेषयामास दौत्येन रावणस्य ततोऽङ्गदम् ॥ ५४ ॥

लङ्कापुरीके उपवनमें वानरसेनाको ठहराकर श्रीरघुनाथजीने बुद्धिमान् वानर अङ्गदको दूतके रूपमें रावणके यहाँ भेजा ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि सेतुबन्धने त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें सेतुबन्धविषयक दो सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८३ ॥

चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अङ्गदका रावणके पास जाकर रामका संदेश सुनाकर लौटना तथा राक्षसों और वानरोंका घोर संग्राम

मार्कण्डेय उवाच

प्रभूतान्नोदके तस्मिन् बहुमूलफले वने ।
सेनां निवेश्य काकुत्स्थो विधिवत् पर्यरक्षत ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! लङ्काके उस वनमें अन्न और जलका बहुत सुभीता था। फल और मूल प्रचुर मात्रामें उपलब्ध थे; अतः वहीं सेनाकी छावनी डालकर श्रीरामचन्द्रजी विधिपूर्वक उसकी रक्षा करते रहे ॥ १ ॥

रावणः संविधिं चक्रे लङ्कायां शास्त्रनिर्मिताम् ।
प्रकृत्यैव दुराधर्षा दृढप्राकारतोरणा ॥ २ ॥

इधर रावण लङ्कामें शास्त्रोक्त प्रकारसे बनी हुई युद्ध-सामग्री (मशीनगन आदि) का संग्रह करने लगा। लङ्काकी चहारदीवारी और नगर-द्वार अत्यन्त सुदृढ थे; अतः स्वभावसे ही वह दुर्धर्ष थी—किसी भी आक्रमणकारीका वहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन था ॥ २ ॥

अगाधतोयाः परिखा मीननक्रसमाकुलाः ।
बभूवुः सप्त दुर्धर्षाः खादिरैः शङ्कुभिश्चिताः ॥ ३ ॥

नगरके चारों ओर सात गहरी खाइयाँ थीं, जिनमें अगाध जल भरा रहता था और उनमें मत्स्य-मगर आदि जल-जन्तु निवास करते थे। इन खाइयोंमें सब ओर खैरके खूँटे गड़े हुए थे ॥ ३ ॥

कपाटयन्त्रदुर्धर्षा बभूवुः सहुडोपलाः ।
साशीविषघटायोधाः ससर्जरसपांसवः ॥ ४ ॥

मजबूत किवाड़ लगे थे और गोला बरसानेवाले यन्त्र (मशीनें) यथास्थान लगे थे। इनके सिवा वहाँ बहुत-से शङ्कु और गोले जमा किये गये थे। इन सब कारणोंसे इन खाइयोंको पार करना बहुत कठिन था। विषधर सर्पोंके समूह, सैनिक, सर्जरस (लाह) और धूल—इन सबसे संयुक्त और सुरक्षित होनेके कारण भी वे खाइयाँ दुर्गम थीं ॥

मुसलालातनाराचतोमरासिपरश्वधैः ।
अन्विताश्च शतघ्नीभिः समधूच्छिष्टमुद्गराः ॥ ५ ॥

मुसल, अलात (बनैठी), बाण, तोमर, तलवार, फरसे, मोमके मुद्गर तथा तोप आदि अस्त्र-शस्त्रोंके संग्रहके कारण भी वे खाइयाँ दुर्लङ्घ्य थीं ॥ ५ ॥

पुरद्वारेषु सर्वेषु गुल्माः स्थावरजङ्गमाः ।
बभूवुः पत्तिबहुलाः प्रभूतगजवाजिनः ॥ ६ ॥

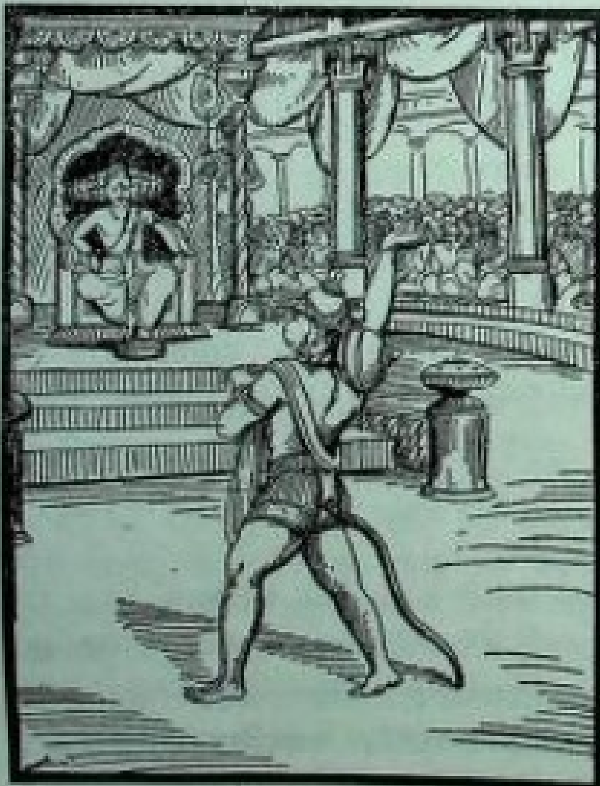
नगरके सभी दरवाजोंपर छिपकर बैठनेके लिये बुर्ज बने हुए थे। ये स्थावर गुल्म कहलाते थे और घूम-फिरकर रक्षा करनेवाले जो सैनिक नियुक्त किये गये थे वे जङ्गम गुल्म कहे जाते थे। इनमें अधिकांश पैदल और बहुत-से हाथीसवार तथा घुड़सवार भी थे ॥ ६ ॥

अङ्गदस्त्वथ लङ्काया द्वारदेशमुपागतः ।
विदितो राक्षसेन्द्रस्य प्रविवेश गतव्यथः ॥ ७ ॥
मध्ये राक्षसकोटीनां बह्वीनां सुमहाबलः ।
शुशुभे मेघमालाभिरादित्य इव संवृतः ॥ ८ ॥

(श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे) महाबली अङ्गद दूत बनकर लङ्कापुरीके द्वारपर आये। राक्षसराज रावणको उनके आगमनकी सूचना दी गयी। फिर अनुमति मिलनेपर उन्होंने निर्भय होकर पुरीमें प्रवेश किया। अनेक करोड़ राक्षसोंके बीचमें आते हुए अङ्गद मेघोंकी घटासे घिरे हुए सूर्यदेवके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ७-८ ॥

स समासाद्य पौलस्त्यममात्यैरभिसंवृतम् ।
रामसंदेशमामन्त्र्य वाग्मी वक्तुं प्रचक्रमे ॥ ९ ॥

मन्त्रियोंसे घिरकर बैठे हुए पुलस्त्यनन्दन रावणके पास पहुँचकर कुशल वक्ता अङ्गदने रावणको सम्बोधित करके श्रीरामचन्द्रजीका संदेश इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ ९ ॥



आह त्वां राघवो राजन् कोसलेन्द्रो महायशाः ।
प्राप्तकालमिदं वाक्यं तदादत्स्व कुरुष्व च ॥ १० ॥

'राजन्! कोसलदेशके महाराज महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजीने तुमसे कहनेके लिये जो समयोचित संदेश भेजा है, उसे सुनो और तदनुसार कार्य करो ॥ १० ॥

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ।
विनश्यन्त्यनयाविष्टा देशाश्च नगराणि च ॥ ११ ॥

'जो राजा अपने मनको काबूमें न रखकर अन्यायमें तत्पर रहता है, उसका आश्रय लेकर उसके अधीन रहनेवाले नगर और देश भी अनीतिपरायण होकर नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

त्वयैकेनापराद्धं मे सीतामाहरता बलात् ।
वधायानपराद्धानामन्येषां तद् भविष्यति ॥ १२ ॥

'सीताका बलपूर्वक अपहरण करके मेरा अपराध तो अकेले तुमने किया है, परंतु इसके कारण अन्य निर्दोष लोग भी मारे जायँगे ॥ १२ ॥

ये त्वया बलदर्पाभ्यामाविष्टेन वनेचराः ।
ऋषयो हिंसिताः पूर्वं देवाश्चाप्यवमानिताः ॥ १३ ॥
राजर्षयश्च निहता रुदत्यश्च हृताः स्त्रियः ।
तदिदं समनुप्राप्तं फलं तस्यानयस्य ते ॥ १४ ॥

'तुमने बल और अहंकारसे उन्मत्त होकर पहले जिन वनवासी ऋषियोंकी हत्या की, देवताओंका अपमान किया, राजर्षियोंके प्राण लिये तथा रोती-बिलखती अबलाओंका भी अपहरण किया था, उन सब अत्याचारोंका फल अब तुम्हें प्राप्त होनेवाला है ॥ १३-१४ ॥

हन्तास्मि त्वां सहामात्यैर्युध्यस्व पुरुषो भव ।
पश्य मे धनुषो वीर्यं मानुषस्य निशाचर ॥ १५ ॥

'मैं मन्त्रियोंसहित तुम्हें मार डालूँगा। साहस हो तो युद्ध करो और पौरुषका परिचय दो। निशाचर! यद्यपि मैं मनुष्य हूँ, तो भी मेरे धनुषका बल देखना ॥ १५ ॥

मुच्यतां जानकी सीता न मे मोक्ष्यसि कर्हिचित् ।
अराक्षसमिमं लोकं कर्तास्मि निशितैः शरैः ॥ १६ ॥

'जनकनन्दिनी सीताको छोड़ दो, अन्यथा कभी मेरे हाथसे जीवित नहीं बचोगे। मैं अपने तीखे बाणोंद्वारा इस संसारको राक्षसोंसे सूना कर दूँगा' ॥ १६ ॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य दूतस्य परुषं वचः ।
श्रुत्वा न ममृषे राजा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके दूतके मुखसे ऐसी कठोर बातें सुनकर राजा रावण सहन न कर सका। वह क्रोधसे मूर्छित हो उठा ॥ १७ ॥

इङ्गितज्ञास्ततो भर्तुश्चत्वारो रजनीचराः ।
चतुर्ष्वङ्गेषु जगृहुः शार्दूलमिव पक्षिणः ॥ १८ ॥

तब स्वामीके संकेतको समझनेवाले चार निशाचर अपनी जगहसे उठे और जिस प्रकार पक्षी सिंहको पकड़े, उसी प्रकार वे अङ्गदके चार अङ्गोंको पकड़ने लगे ॥ १८ ॥

तांस्तथाङ्गेषु संसक्तानङ्गदो रजनीचरान् ।
आदायैव समुत्पत्य प्रासादतलमाविशत् ॥ १९ ॥

अङ्गद इस प्रकार अपने अङ्गोंसे सटे हुए उन चारों राक्षसोंको लिये-दिये आकाशमें उछलकर महलकी छतपर जा चढ़े ॥ १९ ॥

वेगेनोत्पततस्तस्य पेतुस्ते रजनीचराः ।
भुवि सम्भिन्नहृदयाः प्रहारवरपीडिताः ॥ २० ॥

उछलते समय उनके वेगसे छूटकर वे चारों राक्षस पृथ्वीपर जा गिरे । उन राक्षसोंकी छाती फट गयी और अधिक चोट लगनेके कारण उन्हें बड़ी पीड़ा हुई ॥ २० ॥

संसक्तो हर्म्यशिखरात् तस्मात् पुनरवापतत् ।
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां सुवेलस्य समीपतः ॥ २१ ॥

छतपर चढ़े हुए अङ्गद फिर उस महलके कँगूरेसे कूद पड़े और लङ्कापुरीको लाँघकर सुवेलपर्वतके समीप आ पहुँचे ॥ २१ ॥

कोसलेन्द्रमथागम्य सर्वमावेद्य वानरः ।
विशश्राम स तेजस्वी राघवेणाभिनन्दितः ॥ २२ ॥

फिर कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीसे मिलकर तेजस्वी वानर अङ्गदने रावणके दरबारकी सारी बातें बतायीं । श्रीरामने अङ्गदकी बड़ी प्रशंसा की । फिर वे विश्राम करने लगे ॥ २२ ॥

ततः सर्वाभिसारेण हरीणां वातरंहसाम् ।
भेदयामास लङ्कायाः प्राकारं रघुनन्दनः ॥ २३ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीरामने वायुके समान वेगशाली वानरोंकी सम्पूर्ण सेनाके द्वारा एक साथ लङ्कापर धावा बोल दिया और उसकी चहारदीवारी तुड़वा डाली ॥ २३ ॥

बिभीषणर्क्षाधिपती पुरस्कृत्याथ लक्ष्मणः ।
दक्षिणं नगरद्वारमवामृद्नाद् दुरासदम् ॥ २४ ॥

नगरके दक्षिण द्वारमें प्रवेश करना बहुत कठिन था, परंतु लक्ष्मणने विभीषण और जाम्बवान्‌को आगे करके उसे भी धूलमें मिला दिया ॥ २४ ॥

करभारुणपाण्डूनां हरीणां युद्धशालिनाम् ।
कोटीशतसहस्रेण लङ्कामभ्यपतत् तदा ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने हथेलीके समान श्वेत और लाल रंगके युद्धकुशल वानरोंकी दस खरब सेनाके साथ लङ्कामें प्रवेश किया ॥ २५ ॥



प्रलम्बबाहूरुकरजङ्घान्तरविलम्बिनाम् ।
ऋक्षाणां धूम्रवर्णानां तिस्रः कोट्यो व्यवस्थिताः ॥ २६ ॥

उनके भुजा, ऊरु, हाथ और जङ्घा (पिंडली)—ये सभी अङ्ग विशाल थे तथा अङ्गोंकी कान्ति धुएँके समान काली थी, ऐसे तीन करोड़ रीछ सैनिक भी उनके साथ लङ्कामें जाकर युद्धके लिये डटे हुए थे ॥ २६ ॥

उत्पतद्भिः पतद्भिश्च निपतद्भिश्च वानरैः ।
नादृश्यत तदा सूर्यो रजसा नाशितप्रभः ॥ २७ ॥

उस समय वानरोंके उछलने-कूदने तथा गिरने-पड़नेसे इतनी धूल उड़ी कि उससे सूर्यकी प्रभा नष्ट-सी हो गयी और उसका दीखना बंद हो गया ॥ २७ ॥

शालिप्रसूनसदृशैः शिरीषकुसुमप्रभैः ।
तरुणादित्यसदृशैः शणगौरैश्च वानरैः ॥ २८ ॥
प्राकारं ददृशुस्ते तु समन्तात् कपिलीकृतम् ।
राक्षसा विस्मिता राजन् सस्त्रीवृद्धाः समन्ततः ॥ २९ ॥

राजन् ! धानके फूल-जैसे रंगवाले, मौलसिरीके पुष्प-सदृश कान्तिवाले, प्रातःकालके सूर्यके समान अरुण प्रभावाले तथा सनईके समान सफेद रंगवाले वानरोंसे व्याप्त होनेके कारण लङ्काकी चहारदीवारी चारों ओर कपिलवर्णकी दिखायी देती थी । स्त्रियों और बूढ़ोंसहित समस्त लङ्कावासी राक्षस चारों ओर आश्चर्यचकित होकर इस दृश्यको देख रहे थे ॥ २८-२९ ॥

बिभिदुस्ते मणिस्तम्भान् कर्णाट्टशिखराणि च ।
भग्नोन्मथितशृङ्गाणि यन्त्राणि च विचिक्षिपुः ॥ ३० ॥

वानर सैनिक महलोंके मणिनिर्मित खम्भों और अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे महलोंके कंगूरोंको तोड़ने-फोड़ने लगे । गोलाकारी

करनेवाले जो तोप आदि यन्त्र लगे थे, उनके शिखरोंको चूर-चूर करके उन्होंने दूर फेंक दिया ॥ ३० ॥

परिगृह्य शतघ्नीश्च सचक्राः सहुडोपलाः ।
चिक्षिपुर्भुजवेगेन लङ्कामध्ये महास्वनाः ॥ ३१ ॥

पहियोंवाली तोपों, शक्तों और गोलोंको ले-लेकर महान् कोलाहल करते हुए वानर अपनी भुजाओंके वेगसे उन्हें लङ्कामें फेंकने लगे ॥ ३१ ॥

प्राकारस्थाश्च ये केचिन्निशाचरगणास्तथा ।
प्रदुद्रुवुस्ते शतशः कपिभिः समभिद्रुताः ॥ ३२ ॥

जो कोई निशाचर चहारदीवारीकी रक्षाके लिये सैकड़ोंकी संख्यामें वहाँ खड़े थे, वे सब वानरोंद्वारा खदेड़े जानेपर भाग खड़े हुए ॥ ३२ ॥

ततस्तु राजवचनाद् राक्षसाः कामरूपिणः ।
निर्ययुर्विकृताकाराः सहस्रशतसङ्घशः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर राक्षसराज रावणकी आज्ञा पाकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षस लाख-लाखकी टोली बनाकर नगरसे बाहर निकले। उन सबकी आकृति बड़ी विकराल थी ॥ ३३ ॥

शस्त्रवर्षाणि वर्षन्तो द्रावयित्वा वनौकसः ।
प्राकारं शोभयन्तस्ते परं विक्रममास्थिताः ॥ ३४ ॥

वे चहारदीवारीकी शोभा बढ़ाते हुए अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करके वनवासी वानरोंको खदेड़ने लगे और अपने उत्तम पराक्रमका परिचय देने लगे ॥ ३४ ॥

स माषराशिसदृशैर्बभूव क्षणदाचरैः ।
कृतो निर्वानरो भूयः प्राकारो भीमदर्शनैः ॥ ३५ ॥

उड़दके ढेर-जैसे काले-कलूटे उन भयंकर निशाचरोंने लड़कर पुनः उस चहारदीवारीको वानरोंसे सूनी कर दिया ॥ ३५ ॥

पेतुः शूलविभिन्नाङ्गा बहवो वानरर्षभाः ।
स्तम्भतोरणभग्नाश्च पेतुस्तत्र निशाचराः ॥ ३६ ॥

उनके शूलोंकी मारसे अङ्ग विदीर्ण हो जानेके कारण बहुत-से श्रेष्ठ वानर धराशायी हो गये। इसी प्रकार वानरोंके हाथोंसे खम्भोंकी मार खाकर कितने ही निशाचर युद्धका मैदान छोड़कर भाग गये और कितने वहीं ढेर हो गये ॥ ३६ ॥

केशाकेश्यभवद् युद्धं रक्षसां वानरैः सह ।
नखैर्दन्तैश्च वीराणां खादतां वै परस्परम् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् वीर राक्षसोंका वानरोंके साथ सिरके बाल पकड़कर युद्ध होने लगा। वे नखों और दाँतोंसे भी एक दूसरेको काट खाते थे ॥ ३७ ॥

निष्टनन्तो ह्युभयतस्तत्र वानरराक्षसाः ।
हता निपतिता भूमौ न मुञ्चन्ति परस्परम् ॥ ३८ ॥

दोनों ओरसे गर्जना करते हुए वानर तथा राक्षस इस प्रकार युद्ध करते थे कि मरकर पृथ्वीपर गिर जानेके बाद भी एक-दूसरेको छोड़ते नहीं थे ॥ ३८ ॥

रामस्तु शरजालानि ववर्ष जलदो यथा ।
तानि लङ्कां समासाद्य जघ्नुस्तान् रजनीचरान् ॥ ३९ ॥

उधर श्रीरामचन्द्रजी भी, जैसे बादल जल बरसाते हैं, उसी प्रकार बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे और वे बाण लङ्कामें घुसकर वहाँ खड़े हुए निशाचरोंके प्राण लेने लगे ॥ ३९ ॥

सौमित्रिरपि नाराचैर्दृढधन्वा जितक्लमः ।
आदिश्यादिश्य दुर्गस्थान् पातयामास राक्षसान् ॥ ४० ॥

क्लेश और थकावटपर विजय पानेवाले सुदृढ़ धनुर्धर सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी सूचना दे-देकर नाराच नामक बाणोंद्वारा दुर्गके भीतर रहनेवाले राक्षसोंको भी मार गिराने लगे ॥ ४० ॥

ततः प्रत्यवहारोऽभूत् सैन्यानां राघवाज्ञया ।
कृते विमर्दे लङ्कायां लब्धलक्ष्यो जयोत्तरः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार लङ्कामें भीषण मार-काट मचानेके बाद वानरसैनिक लक्ष्यसिद्धिपूर्वक विजय पाकर श्रीरघुनाथजीकी आज्ञासे युद्ध बंद करके शिविरकी ओर लौट गये ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि लङ्काप्रवेशे चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें लङ्कामें प्रवेशविषयक दो सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८४ ॥



पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीराम और रावणकी सेनाओंका द्वन्द्वयुद्ध

मार्कण्डेय उवाच

ततो निविशमानांस्तान् सैनिकान् रावणानुगाः ।
अभिजग्मुर्गणानेके पिशाचक्षुद्ररक्षसाम् ॥ १ ॥

पर्वणः पतनो जम्भः खरः क्रोधवशो हरिः ।
प्ररुजश्चारुजश्चैव प्रघसश्चैवमादयः ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! जब वानर सैनिक

शिबिरमें प्रवेश करने लगे, उस समय रावणकी सेनामें रहनेवाले पर्वण, पतन, जम्भ, खर, क्रोधवश, हरि, प्ररुज, अरुज और प्रघस आदि पिशाच तथा अधम राक्षसोंके अनेक दलोंने आकर उनपर धावा बोल दिया ॥ १-२ ॥

ततोऽभिपततां तेषामदृश्यानां दुरात्मनाम्।
अन्तर्धानवधं तज्ज्ञश्चकार स विभीषणः ॥ ३ ॥

वे दुरात्मा निशाचर अन्तर्धानविद्यासे अदृश्य होकर आक्रमण कर रहे थे। विभीषण उस विद्याके जानकार थे, अतः उन्होंने उन राक्षसोंकी अन्तर्धानशक्तिको नष्ट कर दिया ॥

ते दृश्यमाना हरिभिर्बलिभिर्दूरपातिभिः।
निहताः सर्वशो राजन् महीं जग्मुर्गतासवः ॥ ४ ॥

फिर तो वे सभी राक्षस वानरोंकी दृष्टिमें आ गये। राजन्! वानर बलवान् तो थे ही, वे दूरतक उछलकर जानेकी शक्ति रखते थे। वे सब ओरसे कूद-कूदकर उन्हें मारने लगे। उनकी मार खाकर वे सभी राक्षस प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४ ॥

अमृष्यमाणः सबलो रावणो निर्ययावथ।
राक्षसानां बलैर्घोरैः पिशाचानां च संवृतः ॥ ५ ॥

रावणके लिये यह बात असह्य हो उठी। वह पिशाचों तथा राक्षसोंकी भयंकर सेनासे घिरा हुआ दल-बलके साथ लङ्कासे बाहर निकला ॥ ५ ॥

युद्धशास्त्रविधानज्ञ उशना इव चापरः।
व्यूह्य चौशनसं व्यूहं हरीनभ्यवहारयत् ॥ ६ ॥

वह दूसरे शुक्राचार्यके समान युद्धशास्त्रके विधानका ज्ञाता था। उसने शुक्राचार्यके मतके अनुसार व्यूह-रचना करके सब वानरोंको घेर लिया ॥ ६ ॥

राघवस्तु विनिर्यान्तं व्यूढानीकं दशाननम्।
बार्हस्पत्यं विधिं कृत्वा प्रत्यव्यूहन्निशाचरम् ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने जब देखा कि दशमुख रावण व्यूहाकार सेनाको साथ ले नगरसे बाहर निकल रहा है, तब उन्होंने भी उस निशाचरके विरुद्ध बृहस्पतिकी बतायी हुई रीतिसे अपनी सेनाका व्यूह बनाया ॥ ७ ॥

समेत्य युयुधे तत्र ततो रामेण रावणः।
युयुधे लक्ष्मणश्चापि तथैवेन्द्रजिता सह ॥ ८ ॥

तदनन्तर वहाँ पहुँचकर रावण श्रीरामचन्द्रजीके साथ युद्ध करने लगा। दूसरी ओर लक्ष्मणने भी इन्द्रजित्‌के साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥ ८ ॥

विरूपाक्षेण सुग्रीवस्तारेण च निखर्वटः।
तुण्डेन च नलस्तत्र पटुशः पनसेन च ॥ ९ ॥

सुग्रीवने विरूपाक्षके साथ युद्ध किया। निखर्वट नामक राक्षस तार नामक वानरसे जा भिड़ा। नलने निशाचर तुण्डका सामना किया तथा पटुश नामक राक्षस पनस वानरके साथ युद्ध करने लगा ॥ ९ ॥

विषह्यं यं हि यो मेने स स तेन समेयिवान्।
युयुधे युद्धवेलायां स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ १० ॥

जो जिसे अपने जोड़का समझता था, उसीके साथ उसकी भिड़न्त हुई। सबलोग युद्धके समय अपने बाहुबलका आश्रय ले शत्रुका सामना करते थे ॥ १० ॥

स सम्प्रहारो ववृधे भीरूणां भयवर्धनः।
लोमसंहर्षणो घोरः पुरा देवासुरे यथा ॥ ११ ॥

पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंमें जैसा भयंकर तथा रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था, उसी प्रकार वानरों और निशाचरोंका यह युद्ध भयानकरूपसे बढ़ता जा रहा था। यह संग्राम कायरोंके भयको बढ़ानेवाला था ॥ ११ ॥

रावणो राममानर्च्छच्छक्तिशूलासिवृष्टिभिः।
निशितैरायसैस्तीक्ष्णै रावणं चापि राघवः ॥ १२ ॥
तथैवेन्द्रजितं यत्तं लक्ष्मणो मर्मभेदिभिः।
इन्द्रजिच्चापि सौमित्रिं बिभेद बहुभिः शरैः ॥ १३ ॥

रावणने शक्ति, शूल और खड्गकी वर्षा करके श्रीरामचन्द्रजीको बहुत पीड़ा दी तथा श्रीरघुनाथजीने भी लोहेके बने हुए तीखे बाणोंद्वारा रावणको अत्यन्त पीड़ित किया। इसी प्रकार युद्धके लिये उद्यत रहनेवाले इन्द्रजित्‌को लक्ष्मणने मर्मभेदी बाणोंद्वारा घायल किया और इन्द्रजित्‌ने सुमित्रानन्दन लक्ष्मणको अनेक बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ १२-१३ ॥

विभीषणः प्रहस्तं च प्रहस्तश्च विभीषणम्।
खगपत्रैः शरैस्तीक्ष्णैरभ्यवर्षद् गतव्यथः ॥ १४ ॥

इधर विभीषण प्रहस्तपर और प्रहस्त विभीषणपर पंख-युक्त तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे। उन दोनोंमेंसे कोई भी व्यथाका अनुभव नहीं करता था ॥ १४ ॥

तेषां बलवतामासीन्महास्त्राणां समागमः।
विव्यथुः सकला येन त्रयो लोकाश्चराचराः ॥ १५ ॥

बड़े-बड़े अस्त्र धारण करनेवाले उन बलवान् वीरोंका वह संग्राम इतना भयंकर था कि उससे तीनों लोकोंके समस्त चराचर प्राणी व्यथित हो उठे ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रामरावणद्वन्द्वयुद्धे पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें रामरावणद्वन्द्वयुद्धविषयक दो सौ पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८५ ॥

षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रहस्त और धूम्राक्षके वधसे दुखी हुए रावणका कुम्भकर्णको जगाना और उसे युद्धमें भेजना

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रहस्तः सहसा समभ्येत्य विभीषणम् ।
गदया ताडयामास विनद्य रणकर्कशः ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! तदनन्तर युद्धमें निष्ठुर पराक्रम दिखानेवाले प्रहस्तने सहसा विभीषणके पास पहुँचकर गर्जना करते हुए उनपर गदासे आघात किया ॥ १ ॥

स तयाभिहतो धीमान् गदया भीमवेगया ।
नाकम्पत महाबाहुर्हिमवानिव सुस्थिरः ॥ २ ॥

भयानक वेगवाली उस गदासे आहत होकर भी बुद्धिमान् महाबाहु विभीषण विचलित नहीं हुए। वे हिमालयके समान सुस्थिरभावसे खड़े रहे ॥ २ ॥

ततः प्रगृह्य विपुलां शतघण्टां विभीषणः ।
अनुमन्त्र्य महाशक्तिं चिक्षेपास्य शिरः प्रति ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् विभीषणने एक विशाल महाशक्ति हाथमें ली, जिसमें शोभाके लिये सौ घंटियाँ लगी हुई थीं । उसे अभिमन्त्रित करके उन्होंने प्रहस्तके मस्तकपर दे मारा ॥ ३ ॥

पतन्त्या स तया वेगाद् राक्षसोऽशनिवेगया ।
हृतोत्तमाङ्गो ददृशे वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ ४ ॥

विद्युत्‌के समान वेगवाली उस महाशक्तिका वेगपूर्वक आघात होते ही राक्षस प्रहस्तका मस्तक धड़से अलग हो गया और वह आँधीके द्वारा उखाड़े हुए वृक्षकी भाँति धराशायी दिखायी देने लगा ॥ ४ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं संख्ये प्रहस्तं क्षणदाचरम् ।
अभिदुद्राव धूम्राक्षो वेगेन महता कपीन् ॥ ५ ॥

निशाचर प्रहस्तको युद्धमें मारा गया देख धूम्राक्ष बड़े वेगसे वानरोंकी ओर दौड़ा ॥ ५ ॥

तस्य मेघोपमं सैन्यमापतद् भीमदर्शनम् ।
दृष्ट्वैव सहसा दीर्णा रणे वानरपुङ्गवाः ॥ ६ ॥

मेघोंकी काली घटाके समान भयानक दिखायी देनेवाली उसकी सेनाको आते देख सभी श्रेष्ठ वानर सहसा भयभीत होकर युद्धसे भाग चले ॥ ६ ॥

ततस्तान् सहसा दीर्णान् दृष्ट्वा वानरपुङ्गवान् ।
निर्ययौ कपिशार्दूलो हनूमान् मारुतात्मजः ॥ ७ ॥

उन भयभीत प्रमुख वानरोंको सहसा पलायन करते देख कपिकेसरी मारुतनन्दन हनुमान्‌जी धूम्राक्षका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ७ ॥

तं दृष्ट्वावस्थितं संख्ये हरयः पवनात्मजम् ।
महत्या त्वरया राजन् संन्यवर्तन्त सर्वशः ॥ ८ ॥

राजन् ! पवनकुमारको युद्धके लिये उपस्थित देख सभी वानर सब ओरसे बड़ी उतावलीके साथ लौट आये ॥ ८ ॥

ततः शब्दो महानासीत् तुमुलो लोमहर्षणः ।
रामरावणसैन्यानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ ९ ॥

फिर तो एक दूसरेपर धावा बोलती हुई श्रीराम तथा रावणकी सेनाओंका अत्यन्त भयंकर रोमाञ्चकारी कोलाहल आरम्भ हो गया ॥ ९ ॥

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे घोरे रुधिरकर्दमे ।
धूम्राक्षः कपिसैन्यं तद् द्रावयामास पत्रिभिः ॥ १० ॥

उस घोर संग्राममें धरतीपर रक्तकी कीच जम गयी थी। उसी समय धूम्राक्ष अपने बाणोंसे उस वानरसेनाको खदेड़ने लगा ॥ १० ॥

तं स रक्षोमहामात्रमापतन्तं सपत्नजित् ।
प्रतिजग्राह हनुमांस्तरसा पवनात्मजः ॥ ११ ॥

तब शत्रुविजयी पवननन्दन हनुमान्‌ने अपनी ओर आते हुए उस विशालकाय राक्षसको बड़े वेगसे धर दबाया ॥ ११ ॥

तयोर्युद्धमभूद् घोरं हरिराक्षसवीरयोः ।
जिगीषतोर्युधान्योन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव ॥ १२ ॥

उन दोनों वानर तथा राक्षसवीरोंमें भयंकर युद्ध छिड़ गया । वे इन्द्र और प्रह्लादकी भाँति युद्ध करके एक दूसरेको जीतना चाहते थे ॥ १२ ॥

गदाभिः परिघैश्चैव राक्षसो जघ्निवान् कपिम् ।
कपिश्च जघ्निवान् रक्षः सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ १३ ॥

निशाचर धूम्राक्षने गदाओं तथा परिघोंद्वारा कपिवर हनुमान्‌जीको चोट पहुँचायी और हनुमान्‌जीने उन राक्षसपर तने और डालियोंसहित वृक्षोंसे प्रहार किया ॥ १३ ॥

ततस्तमतिकोपेन साश्वं सरथसारथिम् ।
धूम्राक्षमवधीत् क्रुद्धो हनूमान् मारुतात्मजः ॥ १४ ॥

तदनन्तर मारुतनन्दन हनुमान्‌जीने अत्यन्त कुपित हो घोड़े, रथ और सारथिसहित धूम्राक्षको मार डाला ॥ १४ ॥

ततस्तं निहतं दृष्ट्वा धूम्राक्षं राक्षसोत्तमम् ।
हरयो जातविस्रम्भा जघ्नुरभ्येत्य सैनिकान् ॥ १५ ॥

राक्षसप्रवर धूम्राक्षको मारा गया देख अन्य वानर तथा भालुओंको अपनी शक्तिपर विश्वास हुआ और वे उत्साहपूर्वक राक्षसोंको मारने लगे ॥ १५ ॥

ते वध्यमाना हरिभिर्बलिभिर्जितकाशिभिः ।
राक्षसा भग्नसंकल्पा लङ्कामभ्यपतन् भयात् ॥ १६ ॥

विजयसे उल्लसित हुए बलवान् वानर वीरोंकी मार खाकर राक्षस हताश हो गये और भयके मारे लङ्काकी ओर भाग चले ॥ १६ ॥

तेऽभिपत्य पुरं भग्ना हतशेषा निशाचराः ।
सर्वं राज्ञे यथावृत्तं रावणाय न्यवेदयन् ॥ १७ ॥

मरनेसे बचे हुए उन निशाचरोंने भग्नमनोरथ होकर लङ्कापुरीमें प्रवेश किया तथा रावणके समीप जाकर युद्धका सब समाचार ज्यों-का-त्यों निवेदन कर दिया ॥१७॥

श्रुत्वा तु रावणस्तेभ्यः प्रहस्तं निहतं युधि ।
धूम्राक्षं च महेष्वासं ससैन्यं वानरर्षभैः ॥ १८ ॥
सुदीर्घमिव निःश्वस्य समुत्पत्य वरासनात् ।
उवाच कुम्भकर्णस्य कर्मकालोऽयमागतः ॥ १९ ॥

उनके मुखसे श्रेष्ठ वानर वीरोंद्वारा युद्धमें सेनासहित प्रहस्त तथा महाधनुर्धर धूम्राक्षके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर रावण बड़ी देरतक शोकभरे उच्छ्वास लेता रहा। फिर वह अपने श्रेष्ठ सिंहासनसे उछलकर खड़ा हो गया और बोला—'अब यह कुम्भकर्णके पराक्रम दिखलानेका समय आ गया है'॥१८-१९॥

इत्येवमुक्त्वा विविधैर्वादित्रैः सुमहास्वनैः ।
शयानमतिनिद्रालुं कुम्भकर्णमबोधयत् ॥ २० ॥

ऐसा कहकर रावणने अत्यन्त उच्चस्वरसे बजनेवाले भाँति-भाँतिके बाजे बजवाकर अधिक नींद लेनेवाले सोये हुए कुम्भकर्णको जगाया ॥ २० ॥

प्रबोध्य महता चैनं यत्नेनागतसाध्वसः ।
स्वस्थमासीनमव्यग्रं विनिद्रं राक्षसाधिपः ॥ २१ ॥
ततोऽब्रवीद् दशग्रीवः कुम्भकर्णं महाबलम् ।
धन्योऽसि यस्य ते निद्रा कुम्भकर्णेयमीदृशी ॥ २२ ॥

महान् प्रयत्नद्वारा उसे जगाकर भयभीत हुए राक्षसराज रावणने, जब महाबली कुम्भकर्ण स्वस्थ, शान्त तथा निद्रारहित होकर बैठ गया, तब उससे इस प्रकार कहा—'भैया कुम्भकर्ण ! तुम धन्य हो जिसे ऐसी नींद आती है ॥ २१-२२ ॥

य इदं दारुणाकारं न जानीषे महाभयम् ।
एष तीर्त्वार्णवं रामः सेतुना हरिभिः सह ॥ २३ ॥
अवमन्येह नः सर्वान् करोति कदनं महत् ।
मया ह्यपहृता भार्या सीता नामास्य जानकी ॥ २४ ॥

'हमलोगोंपर जो यह अत्यन्त दारुण एवं महान् भय उपस्थित हुआ है, इसका तुम्हें पता ही नहीं है। यह राम सेतुद्वारा समुद्रको लाँघकर हमलोगोंकी अवहेलना करके वानरोंके साथ यहाँ आ पहुँचा है और राक्षसोंका महासंहार कर रहा है। मैंने इसकी पत्नी जनककुमारी सीताका अपहरण किया था ॥ २३-२४ ॥

तां नेतुं स इहायातो बद्ध्वा सेतुं महार्णवे ।
तेन चैव प्रहस्तादिर्महान् नः स्वजनो हतः ॥ २५ ॥

'उसे वापस लेनेके लिये ही राम महासागरपर पुल बाँधकर यहाँ आया है। उसने हमारे प्रहस्त आदि प्रमुख स्वजनोंको मार डाला है ॥ २५ ॥

तस्य नान्यो निहन्तास्ति त्वामृते शत्रुकर्शन ।
स दंशितोऽभिनिर्याय त्वमद्य बलिनां वर ॥ २६ ॥
रामादीन् समरे सर्वाञ्जहि शत्रूनरिंदम ।

'शत्रुसूदन ! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो उसको मार सके। बलवानोंमें श्रेष्ठ वीर ! तुम शत्रुओंका दमन करनेवाले हो। आज कवच धारण करके निकलो तथा राम आदि समस्त शत्रुओंका समरभूमिमें संहार कर डालो ॥ २६½ ॥

दूषणावरजौ चैव वज्रवेगप्रमाथिनौ ॥ २७ ॥
तौ त्वां बलेन महता सहितावनुयास्यतः ।

'दूषणके छोटे भाई वज्रवेग और प्रमाथी अपनी विशाल सेनाके साथ तुम्हारा अनुसरण करेंगे' ॥ २७½ ॥

इत्युक्त्वा राक्षसपतिः कुम्भकर्णं तरस्विनम् ।
संदिदेशेतिकर्तव्यं वज्रवेगप्रमाथिनौ ॥ २८ ॥

वेगशाली वीर कुम्भकर्णसे ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने वज्रवेग और प्रमाथीको, युद्धमें क्या-क्या करना है, इन सब बातोंको समझाया और उनके पालनका आदेश दिया ॥२८॥

तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ रावणं दूषणानुजौ ।
कुम्भकर्णं पुरस्कृत्य तूर्णं निर्ययतुः पुरात् ॥ २९ ॥

दूषणके वे दोनों वीर भाई रावणसे 'तथास्तु' कहकर कुम्भकर्णको आगे करके तुरंत नगरसे बाहर निकले ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि कुम्भकर्णनिर्गमने षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें कुम्भकर्णका युद्धके लिये प्रस्थानविषयक दो सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८६ ॥

सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कुम्भकर्ण, वज्रवेग और प्रमाथीका वध

मार्कण्डेय उवाच

ततो निर्याय स्वपुरात् कुम्भकर्णः सहानुगः ।
अपश्यत् कपिसैन्यं तज्जितकाश्यग्रतः स्थितम् ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! सेवकोंसहित अपने नगरसे निकलकर कुम्भकर्णने अपने सामने खड़ी हुई वानर-सेनाको देखा; जो विजयके उल्लाससे सुशोभित हो रही थी ॥ १ ॥

स वीक्षमाणस्तत् सैन्यं रामदर्शनकाङ्क्षया ।
अपश्यच्चापि सौमित्रिं धनुष्पाणिं व्यवस्थितम् ॥ २ ॥

फिर जब उसने भगवान् श्रीरामके दर्शनकी इच्छासे उस सेनामें इधर-उधर दृष्टि डाली, तब उसे हाथमें धनुष लिये सुमित्रानन्दन लक्ष्मण खड़े दिखायी दिये ॥ २ ॥



तमभ्येत्याशु हरयः परिवव्रुः समन्ततः ।
अभ्यघ्नंश्च महाकायैर्बहुभिर्जगतीरुहैः ॥ ३ ॥

इतनेमें ही वानरोंने चारों ओरसे आकर कुम्भकर्णको शीघ्रतापूर्वक घेर लिया और बहुत-से बड़े-बड़े पेड़ उखाड़कर उन्हींके द्वारा उसपर प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥

करजैरतुदंश्चान्ये विहाय भयमुत्तमम् ।
बहुधा युध्यमानास्ते युद्धमार्गैः प्लवङ्गमाः ॥ ४ ॥
नानाप्रहरणैर्भीमै राक्षसेन्द्रमताडयन् ।

कुछ वानरोंने कुम्भकर्णसे प्राप्त होनेवाले महान् भयकी परवा न करके उसको नखोंसे पीड़ा देनी प्रारम्भ की। युद्धकी विभिन्न प्रणालियोंद्वारा अनेक प्रकारसे युद्ध करते हुए वानर-सैनिक भाँति-भाँतिके भयंकर आयुधोंद्वारा राक्षसराज कुम्भकर्णको चोट पहुँचाने लगे ॥ ४½ ॥

स ताड्यमानः प्रहसन् भक्षयामास वानरान् ॥ ५ ॥
बलं चण्डबलाख्यं च वज्रबाहुं च वानरम् ।

वानरोंके प्रहार करनेपर वह जोर-जोरसे हँसने और उन्हें पकड़-पकड़कर खाने लगा। देखते-देखते बल, चण्डबल और वज्रबाहु नामक वानर उसके मुखके ग्रास बन गये ॥ ५½ ॥

तद् दृष्ट्वा व्यथनं कर्म कुम्भकर्णस्य रक्षसः ॥ ६ ॥
उदक्रोशन् परित्रस्तास्तारप्रभृतयस्तदा ।

राक्षस कुम्भकर्णका वह दुःखदायी कर्म देखकर तार आदि वानर भयभीत हो जोर-जोरसे चीत्कार करने लगे ॥ ६½ ॥

तानुच्चैः क्रोशतः सैन्याञ्छ्रुत्वा स हरियूथपान् ॥ ७ ॥
अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णमपेतभीः ।

अपने सैनिकों तथा वानरयूथपतियोंका वह उच्चस्वरसे किया जाता हुआ चीत्कार सुनकर सुग्रीव निर्भय हो कुम्भकर्णकी ओर दौड़े ॥ ७½ ॥

ततो निपत्य वेगेन कुम्भकर्णं महामनाः ॥ ८ ॥
शालेन जघ्निवान् मूर्ध्नि बलेन कपिकुञ्जरः ।

महामना कपिश्रेष्ठ सुग्रीवने बड़े वेगसे उछलकर एक शालवृक्षके द्वारा कुम्भकर्णके मस्तकपर बलपूर्वक प्रहार किया ॥ ८½ ॥

स महात्मा महावेगः कुम्भकर्णस्य मूर्धनि ॥ ९ ॥
बिभेद शालं सुग्रीवो न चैवाव्यथयत् कपिः ।

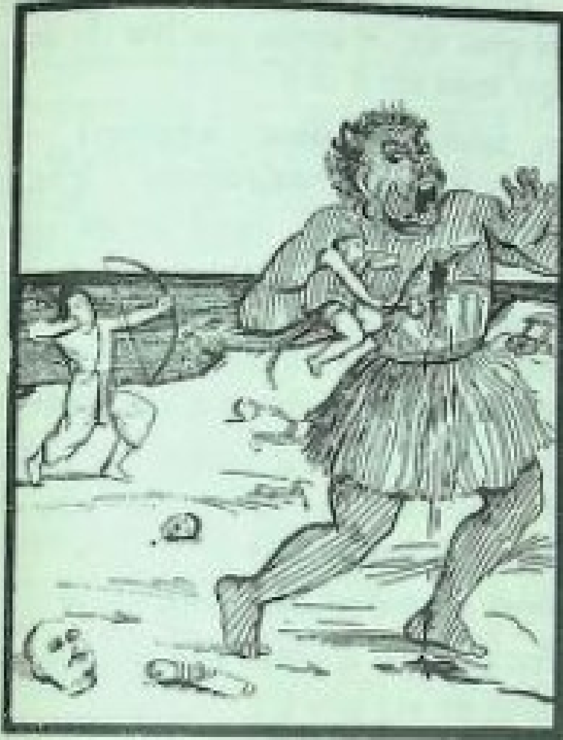
कपिश्रेष्ठ सुग्रीवका हृदय महान् था। उनका वेग भी महान् था। उन्होंने कुम्भकर्णके मस्तकपर पटककर उस शालवृक्षको दो टूक कर डाला; तथापि वे उसे व्यथा न पहुँचा सके ॥ ९½ ॥

ततो विनद्य सहसा शालस्पर्शविबोधितः ॥ १० ॥
दोर्भ्यामादाय सुग्रीवं कुम्भकर्णोऽहरद् बलात् ।

शालके स्पर्शसे कुम्भकर्ण कुछ सावधान हो गया। उसने सहसा गर्जना करके सुग्रीवको दोनों हाथोंसे बलपूर्वक धर दबाया और अपने साथ ले लिया ॥ १०½ ॥

ह्रियमाणं तु सुग्रीवं कुम्भकर्णेन रक्षसा ॥ ११ ॥
अवेक्ष्याभ्यद्रवद् वीरः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।

राक्षस कुम्भकर्णके द्वारा सुग्रीवका अपहरण होता देख मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले सुमित्राकुमार वीरवर लक्ष्मण उसकी ओर दौड़े ॥ ११½ ॥



सोऽभिपत्य महावेगं रुक्मपुङ्खं महाशरम् ॥ १२ ॥
प्राहिणोत् कुम्भकर्णाय लक्ष्मणः परवीरहा ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने कुम्भकर्णके सामने जाकर उसको लक्ष्य करके सुवर्णमय पंखसे सुशोभित एक महावेगशाली महान् बाण चलाया ॥ १२½ ॥

स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहं च सायकः ॥ १३ ॥
जगाम दारयन् भूमिं रुधिरेण समुक्षितः ।

वह बाण उसके कवचको काटकर शरीरको छेदता हुआ रक्तरञ्जित हो धरतीको चीरकर उसमें समा गया ॥ १३½ ॥

तथा स भिन्नहृदयः समुत्सृज्य कपीश्वरम् ॥ १४ ॥
(वेगेन महताऽऽविष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।)
कुम्भकर्णो महेष्वासः प्रगृहीतशिलायुधः ।
अभिदुद्राव सौमित्रिमुद्यम्य महतीं शिलाम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार छाती छिद जानेके कारण महाधनुर्धर कुम्भकर्णने वानरराज सुग्रीवको तो छोड़ दिया और बड़े वेगसे लक्ष्मणकी ओर घूमकर कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' । तत्पश्चात् एक बहुत बड़ी शिला हाथमें लेकर वह सुमित्रानन्दन लक्ष्मणकी ओर दौड़ा ॥ १४-१५ ॥

तस्याभिपततस्तूर्णं क्षुराभ्यामुच्छ्रितौ करौ ।
चिच्छेद निशिताग्राभ्यां स बभूव चतुर्भुजः ॥ १६ ॥

तब लक्ष्मणने भी बड़ी शीघ्रताके साथ तीखी धारवाले दो क्षुर नामक बाण मारकर अपनी ओर आते हुए कुम्भकर्णकी ऊपर उठी हुई दोनों भुजाओंको काट डाला । उनके कटते ही वह चार भुजाओंसे युक्त हो गया ॥ १६ ॥

तानप्यस्य भुजान् सर्वान् प्रगृहीतशिलायुधान् ।
क्षुरैश्चिच्छेद लघ्वस्त्रं सौमित्रिः प्रतिदर्शयन् ॥ १७ ॥

उन चारों भुजाओंमें भी उसने आयुधके रूपमें बड़ी-बड़ी चट्टानें उठा लीं । यह देख सुमित्राकुमारने अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए फिरसे पूर्वोक्त बाण मारकर उसकी उन चारों भुजाओंको भी काट दिया ॥ १७ ॥

स बभूवातिकायश्च बहुपादशिरोभुजः ।
तं ब्रह्मास्त्रेण सौमित्रिर्ददाराद्रिचयोपमम् ॥ १८ ॥

अब उसने अपना शरीर बहुत बड़ा बना लिया । उसके अनेक पैर, अनेक सिर और अनेक भुजाएँ हो गयीं । यह देख लक्ष्मणने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके पर्वतसमूहके समान विशाल शरीरवाले उस राक्षसको चीर डाला ॥ १८ ॥

स पपात महावीर्यो दिव्यास्त्राभिहतो रणे ।
महाशनिविनिर्दग्धः पादपोऽङ्कुरवानिव ॥ १९ ॥

जैसे महान् भयंकर बिजलीके आघातसे शाखाओं और पत्तोंसहित वृक्ष दग्ध हो जाता है, उसी प्रकार लक्ष्मणके दिव्यास्त्रसे आहत होकर महापराक्रमी कुम्भकर्ण रणभूमिमें गिर पड़ा ॥ १९ ॥

तं दृष्ट्वा वृत्रसंकाशं कुम्भकर्णं तरस्विनम् ।
गतासुं पतितं भूमौ राक्षसाः प्राद्रवन् भयात् ॥ २० ॥

वृत्रासुरके समान वेगशाली कुम्भकर्णको प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर पड़ा देख सब राक्षस भयके मारे भाग चले ॥२०॥

तथा तान् द्रवतो योधान् दृष्ट्वा तौ दूषणानुजौ ।
अवस्थाप्याथ सौमित्रिं संक्रुद्धावभ्यधावताम् ॥ २१॥

अपने उन सैनिकोंको इस प्रकार भागते देख दूषणके दोनों भाई—वज्रवेग और प्रमाथीने किसी प्रकार उन्हें रोककर खड़ा किया और अत्यन्त कुपित हो सुमित्राकुमार लक्ष्मणपर धावा बोल दिया ॥ २१ ॥

तावाद्रवन्तौ संक्रुद्धौ वज्रवेगप्रमाथिनौ ।
अभिजग्राह सौमित्रिर्विनद्योभौ पतत्त्रिभिः ॥ २२ ॥

क्रोधमें भरे हुए वज्रवेग और प्रमाथीको अपनी ओर आते देख लक्ष्मणने बड़े जोरसे सिंहनाद किया और उन दोनोंकी गतिको बाणोंद्वारा रोक दिया ॥ २२ ॥

ततः सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
दूषणानुजयोः पार्थ लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर ! फिर तो दूषणके भाइयों तथा बुद्धिमान् लक्ष्मणमें ऐसा भयंकर युद्ध हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥

महता शरवर्षेण राक्षसौ सोऽभ्यवर्षत ।
तौ चापि वीरौ संक्रुद्धावुभौ तं समवर्षताम् ॥ २४ ॥

लक्ष्मण उन दोनों राक्षसोंपर बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा

कर रहे थे और वे दोनों वीर राक्षस भी अत्यन्त कुपित होकर लक्ष्मणपर बाणोंकी बौछार करते थे ॥ २४ ॥

मुहूर्तमिवमभवद् वज्रवेगप्रमाथिनोः ।
सौमित्रेश्च महाबाहोः सम्प्रहारः सुदारुणः ॥ २५ ॥

इस प्रकार वज्रवेग, प्रमाथी और महाबाहु लक्ष्मणका वह भयंकर संग्राम दो घड़ीतक अबाधगतिसे चलता रहा ॥ २५ ॥

अथाद्रिशृङ्गमादाय हनुमान् मारुतात्मजः ।
अभिद्रुत्याददे प्राणान् वज्रवेगस्य रक्षसः ॥ २६ ॥

इसी बीचमें वायुनन्दन हनुमानजीने पर्वतका शिखर हाथमें लेकर वज्रवेग नामक राक्षसके ऊपर आक्रमण किया और उसके प्राण ले लिये ॥ २६ ॥

नीलश्च महता ग्राव्णा दूषणावरजं हरिः ।
प्रमाथिनमभिद्रुत्य प्रममाथ महाबलः ॥ २७ ॥

महाबली नील नामक वानरने एक विशाल चट्टान लेकर दूषणके छोटे भाई प्रमाथीपर हमला किया और उसका कचूमर निकाल दिया ॥ २७ ॥

ततः प्रावर्तत पुनः संग्रामः कटुकोदयः ।
रामरावणसैन्यानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर श्रीराम और रावणकी सेनाओंमें परस्पर आक्रमणपूर्वक भीषण संग्राम आरम्भ हो गया, जो कटु परिणामका जनक था ॥ २८ ॥

शतशो नैर्ऋतान् वन्या जघ्नुर्वन्यांश्च नैर्ऋताः ।
नैर्ऋतास्तत्र वध्यन्ते प्रायेण न तु वानराः ॥ २९ ॥

वनवासी वानरोंने सैकड़ों राक्षसोंको तथा राक्षसोंने वानरोंको घायल किया । उस युद्धमें अधिकांश राक्षस ही मारे जा रहे थे, वानर नहीं ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि कुम्भकर्णादिवधे सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें कुम्भकर्ण आदिका वधविषयक दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥२८७॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल २९½ श्लोक हैं)

अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

इन्द्रजित्का मायामय युद्ध तथा श्रीराम और लक्ष्मणकी मूर्च्छा

मार्कण्डेय उवाच

ततः श्रुत्वा हतं संख्ये कुम्भकर्णं सहानुगम् ।
प्रहस्तं च महेष्वासं धूम्राक्षं चातितेजसम् ॥ १ ॥
पुत्रमिन्द्रजितं वीरं रावणः प्रत्यभाषत ।
जहि राममित्रघ्न सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! तदनन्तर सेवकोंसहित कुम्भकर्ण, महाधनुर्धर प्रहस्त तथा अत्यन्त तेजस्वी धूम्राक्षको संग्राममें मारा गया सुनकर रावणने अपने वीर पुत्र इन्द्रजित्से कहा—'शत्रुसूदन ! तुम राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीवका वध करो ॥ १-२ ॥

त्वया हि मम सत्पुत्र यशो दीप्तमुपार्जितम् ।
जित्वा वज्रधरं संख्ये सहस्राक्षं शचीपतिम् ॥ ३ ॥

'सुपुत्र ! तुमने युद्धमें सहस्र नेत्रोंवाले वज्रधारी शचीपति इन्द्रको जीतकर उज्ज्वल यशका उपार्जन किया है ॥ ३ ॥

अन्तर्हितः प्रकाशो वा दिव्यैर्दत्तवरैः शरैः ।
जहि शत्रूनमित्रघ्न मम शस्त्रभृतां वर ॥ ४ ॥

'शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ शत्रुनाशन वीर ! जिनके लिये देवताओंने तुम्हें वरदान दिया है, ऐसे दिव्यास्त्रोंद्वारा प्रकटरूपमें या अदृश्य होकर मेरे शत्रुओंका नाश करो ॥ ४ ॥

रामलक्ष्मणसुग्रीवाः शरस्पर्शं न तेऽनघ ।
समर्थाः प्रतिसोढुं च कुतस्तदनुयायिनः ॥ ५ ॥

'अनघ ! स्वयं राम, लक्ष्मण और सुग्रीव भी तुम्हारे बाणोंका आघात सहन करनेमें समर्थ नहीं हैं, फिर उनके अनुयायी तो हो ही कैसे सकते हैं ? ॥ ५ ॥

अकृता या प्रहस्तेन कुम्भकर्णेन चानघ ।
खरस्यापचितिः संख्ये तां गच्छस्व महाभुज ॥ ६ ॥

'निष्पाप महाबाहो ! प्रहस्त और कुम्भकर्णने भी खरके वधका जो बदला नहीं चुकाया, उसे युद्धमें तुम चुकाओ ॥ ६ ॥

त्वमद्य निशितैर्बाणैर्हत्वा शत्रून् ससैनिकान् ।
प्रतिनन्दय मां पुत्र पुरा जित्वेव वासवम् ॥ ७ ॥

'बेटा ! तुमने पूर्वकालमें इन्द्रको जीतकर जिस प्रकार मुझे आनन्दित किया था, उसी प्रकार आज तुम तीखे बाणोंसे सैनिकोंसहित शत्रुओंका संहार करके मेरा आनन्द बढ़ाओ' ॥ ७ ॥

इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा रथमास्थाय दंशितः ।
प्रययाविन्द्रजिद् राजंस्तूर्णमायोधनं प्रति ॥ ८ ॥

राजन् ! रावणके द्वारा ऐसी आज्ञा होनेपर इन्द्रजित्ने 'बहुत अच्छा' कहकर पिताकी आज्ञा स्वीकार की और वह कवच बाँध रथपर बैठकर तुरंत ही संग्रामभूमिकी ओर चल दिया ॥ ८ ॥

ततो विश्राव्य विस्पष्टं नाम राक्षसपुङ्गवः ।
आह्वयामास समरे लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् उस राक्षसराजने स्पष्टरूपसे अपने नामकी

घोषणा करके शुभलक्षण लक्ष्मणको युद्धके लिये ललकारा ॥

तं लक्ष्मणोऽप्यथावध्य प्रगृह्य सशरं धनुः ।
त्रासयंस्तलघोषेण सिंहः क्षुद्रमृगान् यथा ॥ १० ॥

तब लक्ष्मण भी धनुषपर बाण चढ़ाये हुए उनकी ओर बड़े वेगसे दौड़े और सिंह जैसे छोटे मृगोंको डरा देता है, उसी प्रकार वे अपने धनुषकी टङ्कारसे सब राक्षसोंको त्रास देने लगे ॥ १० ॥

तयोः समभवद् युद्धं सुमहज्जयगृद्धिनोः ।
दिव्यास्त्रविदुषोस्तीव्रमन्योन्यस्पर्धिनोस्तदा ॥ ११ ॥

वे दोनों ही विजयकी अभिलाषा रखनेवाले, दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता तथा परस्पर बड़ी स्पर्धा रखनेवाले थे। उन दोनोंमें उस समय बड़ा भारी युद्ध हुआ ॥ ११ ॥

रावणिस्तु यदा नैनं विशेषयति सायकैः ।
ततो गुरुतरं यत्नमातिष्ठद् बलिनां वरः ॥ १२ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ रावणकुमार इन्द्रजित् जब बाण वर्षा करनेमें लक्ष्मणसे आगे न बढ़ सका, तब उसने गुरुतर प्रयत्न आरम्भ किया ॥ १२ ॥

तत एनं महावेगैरर्दयामास तोमरैः ।
तानागतान् स चिच्छेद सौमित्रिर्निशितैः शरैः ॥ १३ ॥

उसने अत्यन्त वेगशाली तोमरोंकी वर्षा करके लक्ष्मणको पीड़ा पहुँचानेकी चेष्टा की; परंतु लक्ष्मणने तीखे बाणोंसे उन सब तोमरोंको पास आते ही काट गिराया ॥ १३ ॥

ते निकृत्ताः शरैस्तीक्ष्णैर्न्यपतन् धरणीतले ।
तमङ्गदो वालिसुतः श्रीमानुद्यम्य पादपम् ॥ १४ ॥
अभिद्रुत्य महावेगस्ताडयामास मूर्धनि ।
तस्येन्द्रजिदसम्भ्रान्तः प्रासेनोरसि वीर्यवान् ॥ १५ ॥
प्रहर्तुमैच्छत् तं चास्य प्रासं चिच्छेद लक्ष्मणः ।

लक्ष्मणके तीखे बाणोंसे टूक-टूक होकर वे तोमर पृथ्वीपर बिखर गये। तब महावेगशाली वालिपुत्र श्रीमान् अङ्गदने एक वृक्ष उठा लिया और दौड़कर इन्द्रजित्‌के मस्तकपर उसे दे मारा; परंतु इन्द्रजित् इससे तनिक भी विचलित न हुआ। उस पराक्रमी वीरने प्रासद्वारा अङ्गदकी छातीमें प्रहार करनेका विचार किया, किंतु लक्ष्मणने उसे पहले ही काट गिराया ॥ १४-१५½ ॥

तमभ्याशगतं वीरमङ्गदं रावणात्मजः ॥ १६ ॥
गदयाताडयत् सव्ये पार्श्वे वानरपुङ्गवम् ।

तब रावणकुमारने अपने निकट आये हुए उस वानरश्रेष्ठ वीर अङ्गदकी बायीं पसलीमें गदासे आघात किया ॥ १६½ ॥

तमचिन्त्य प्रहारं स बलवान् वालिनः सुतः ॥ १७ ॥
ससर्जेन्द्रजितः क्रोधात् सालस्कन्धं तथाङ्गदः ।

बलवान् वालिनन्दन अङ्गदने इन्द्रजित्‌के उस गदा-प्रहार-की कोई परवा न करके उसके ऊपर क्रोधपूर्वक शालवृक्षका तना उठाकर दे मारा ॥ १७½ ॥

सोऽङ्गदेन रुषोत्सृष्टो वधायेन्द्रजितस्तरुः ॥ १८ ॥
जघानेन्द्रजितः पार्थ रथं साश्वं ससारथिम् ।

युधिष्ठिर ! अङ्गदके द्वारा इन्द्रजित्‌के वधके लिये रोषपूर्वक चलाये हुए उस वृक्षने उसके सारथि और घोड़ोंसहित रथको नष्ट कर दिया ॥ १८½ ॥

ततो हताश्वात् प्रस्कन्द्य रथात् स हतसारथिः ॥ १९ ॥
तत्रैवान्तर्दधे राजन् मायया रावणात्मजः ।

राजन् ! सारथिके मारे जानेपर रावणकुमार इन्द्रजित् उस अश्वहीन रथसे कूद पड़ा और मायाका आश्रय ले वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ १९½ ॥

अन्तर्हितं विदित्वा तं बहुमायं च राक्षसम् ॥ २० ॥
रामस्तं देशमागम्य तत् सैन्यं पर्यरक्षत ।

अनेक प्रकारकी माया जाननेवाले उस राक्षसको अदृश्य हुआ जान भगवान् श्रीराम उस स्थानपर आकर सब ओरसे अपनी सेनाकी रक्षा करने लगे ॥ २०½ ॥

स राममुद्दिश्य शरैस्ततो दत्तवरैस्तदा ॥ २१ ॥
विव्याध सर्वगात्रेषु लक्ष्मणं च महाबलम् ।

तब इन्द्रजित्‌ने भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणके सम्पूर्ण अङ्गोंको देवताओंसे वरदानके रूपमें प्राप्त हुए बाणों-द्वारा क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २१½ ॥

तमदृश्यं शरैः शूरौ माययान्तर्हितं तदा ॥ २२ ॥
योधयामासतुरुभौ रावणिं रामलक्ष्मणौ ।

यद्यपि रावणका पुत्र मायासे तिरोहित हो जानेके कारण दिखायी नहीं देता था, तो भी शूरवीर श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई उसके साथ युद्ध करते ही रहे ॥ २२½ ॥

स रुषा सर्वगात्रेषु तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ २३ ॥
व्यसृजत् सायकान् भूयः शतशोऽथ सहस्रशः ।

इन्द्रजित्‌ने पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी उन दोनों भाइयोंके समस्त अङ्गोंमें रोषपूर्वक सैकड़ों और हजारों बाणोंकी बारंबार वृष्टि की ॥ २३½ ॥

तमदृश्यं विचिन्वन्तः सृजन्तमनिशं शरान् ॥ २४ ॥
हरयो विविशुर्व्योम प्रगृह्य महतीः शिलाः ।

वानरोंने देखा कि यह राक्षस छिपकर निरन्तर बाणोंकी झड़ी लगा रहा है, तब वे हाथोंमें बड़ी-बड़ी शिलाएँ लिये आकाशमें उड़ गये और उसकी खोज करने लगे ॥ २४½ ॥

तांश्च तौ चाप्यदृश्यः स शरैर्विव्याध राक्षसः ॥ २५ ॥
स भृशं ताडयामास रावणिर्माययाऽऽवृतः ।

रावणकुमार अपनी मायासे आवृत होनेके कारण

स्वयं किसीकी दृष्टिमें नहीं आता था; परंतु वह उन दोनों भाइयोंको तथा सम्पूर्ण वानरोंको भी निरन्तर अपने बाणों-द्वारा घायल कर रहा था ॥ २५½ ॥

तौ शरैराचितौ वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
पेततुर्गगनाद् भूमिं सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ २६ ॥

वे दोनों बन्धु श्रीराम और लक्ष्मण ऊपरसे [illegible] बाणोंसे व्याप्त हो गये थे; अतः आकाशसे गिरे हुए सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति इस पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि इन्द्रजिद्युद्धे अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें इन्द्रजित्-युद्धविषयक दो सौ अट्ठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८८ ॥

एकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीराम-लक्ष्मणका सचेत होकर कुबेरके भेजे हुए अभिमन्त्रित जलसे प्रमुख वानरोंसहित अपने नेत्र धोना, लक्ष्मणद्वारा इन्द्रजित्‌का वध एवं सीताको मारनेके लिये उद्यत हुए रावणका अविन्ध्यके द्वारा निवारण करना

मार्कण्डेय उवाच

तावुभौ पतितौ दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
बबन्ध रावणिर्भूयः शरैर्दत्तवरैस्तदा ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको पृथ्वीपर पड़े देख रावणकुमार इन्द्रजित्‌ने जिनके लिये देवताओंका वर प्राप्त था, उन बाणोंद्वारा उन्हें सब ओरसे बाँध लिया ॥ १ ॥

तौ वीरौ शरबन्धेन बद्धाविन्द्रजिता रणे ।
रेजतुः पुरुषव्याघ्रौ शकुन्ताविव पञ्जरे ॥ २ ॥

इन्द्रजित्‌द्वारा बाणोंके बन्धनसे बँधे हुए वे दोनों वीर पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण पिंजड़ेमें बंद हुए दो पक्षियों-की भाँति शोभा पा रहे थे ॥ २ ॥

तौ दृष्ट्वा पतितौ भूमौ शतशः सायकैश्चितौ ।
सुग्रीवः कपिभिः सार्धं परिवार्य ततः स्थितः ॥ ३ ॥

उन दोनोंको सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त एवं पृथ्वीपर पड़े देख वानरोंसहित सुग्रीव उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ३ ॥

सुषेणमैन्दद्विविदैः कुमुदेनाङ्गदेन च ।
हनुमन्नीलतारैश्च नलेन च कपीश्वरः ॥ ४ ॥

सुषेण, मैन्द, द्विविद, कुमुद, अङ्गद, हनुमान्, नील, तार तथा नलके साथ कपिराज सुग्रीव उन दोनों बन्धुओंकी रक्षा करने लगे ॥ ४ ॥

ततस्तं देशमागम्य कृतकर्मा विभीषणः ।
बोधयामास तौ वीरौ प्रज्ञास्त्रेण प्रबोधितौ ॥ ५ ॥

तदनन्तर अपने कर्तव्य कर्मको पूरा करके विभीषण उस स्थानपर आये। उन्होंने प्रज्ञास्त्रद्वारा उन दोनों वीरोंको होशमें लाकर जगाया ॥ ५ ॥

विशल्यौ चापि सुग्रीवः क्षणेनैतौ चकार ह ।
विशल्यया महौषध्या दिव्यमन्त्रप्रयुक्तया ॥ ६ ॥

फिर सुग्रीवने दिव्य मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित विशल्या नामक महौषधिद्वारा उनके अङ्गोंसे बाण निकालकर उन्हें क्षणभरमें स्वस्थ कर दिया ॥ ६ ॥

तौ लब्धसंज्ञौ नृवरौ विशल्यावुदतिष्ठताम् ।
गततन्द्रीक्लमौ चापि क्षणेनैतौ महारथौ ॥ ७ ॥

होशमें आ जानेपर वे दोनों नरश्रेष्ठ महारथी वीर बाणोंसे रहित हो आलस्य और थकावट त्यागकर क्षणभरमें उठ खड़े हुए ॥ ७ ॥

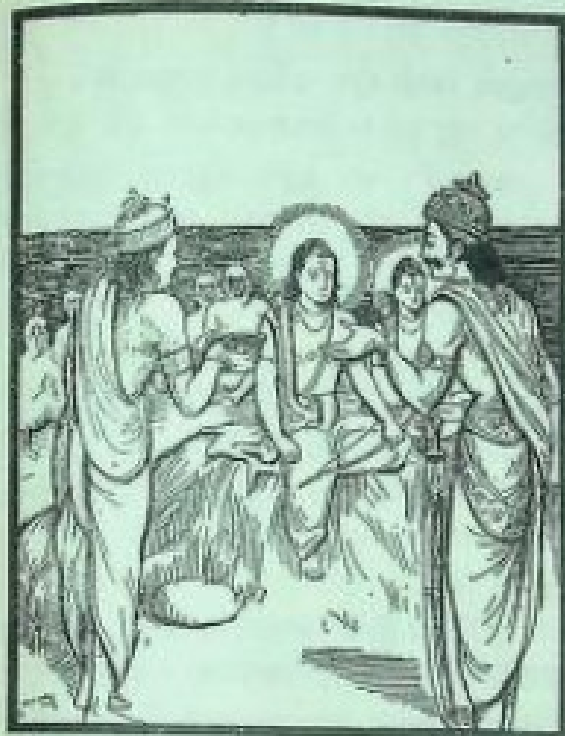
ततो विभीषणः पार्थ राममिक्ष्वाकुनन्दनम् ।
उवाच विज्वरं दृष्ट्वा कृताञ्जलिरिदं वचः ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर! तदनन्तर विभीषणने इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीरामचन्द्रजीको नीरोग एवं स्वस्थ देख हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा— ॥ ८ ॥

इदमम्भो गृहीत्वा तु राजराजस्य शासनात् ।
गुह्यकोऽभ्यागतः श्वेतात् त्वत्सकाशमरिंदम ॥ ९ ॥

शत्रुदमन! राजाधिराज कुबेरकी आज्ञासे एक गुह्यक यह जल लिये हुए श्वेतपर्वतसे चलकर आपके पास आया है ॥ ९ ॥

इदमम्भः कुबेरस्ते महाराजः प्रयच्छति ।
अन्तर्हितानां भूतानां दर्शनार्थं परंतप ॥ १० ॥



परंतप ! महाराज कुबेर आपको यह जल इस उद्देश्यसे समर्पित कर रहे हैं कि आप इसे नेत्रोंमें लगाकर मायासे अदृश्य हुए प्राणियोंको देख सकें ॥ १० ॥

अनेन मृष्टनयनो भूतान्यन्तर्हितान्युत ।
भवान् द्रक्ष्यति यस्मै च प्रदास्यति नरः स तु ॥ ११ ॥

'उन्होंने कहा है कि आप इस जलसे अपने दोनों नेत्र धोकर अदृश्य प्राणियोंको भी देख सकेंगे और आप जिसे यह जल अर्पित करेंगे, वह मनुष्य भी अदृश्य भूतोंको देखनेमें समर्थ होगा' ॥ ११ ॥

तथेति रामस्तद् वारि प्रतिगृह्याभिसंस्कृतम् ।
चकार नेत्रयोः शौचं लक्ष्मणश्च महामनाः ॥ १२ ॥

'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीने वह अभिमन्त्रित जल ले लिया । फिर उन्होंने तथा महामना लक्ष्मणने भी उससे अपने-दोनों नेत्र धोये ॥ १२ ॥

सुग्रीवजाम्बवन्तौ च हनुमानङ्गदस्तथा ।
मैन्दद्विविदनीलाश्च प्रायः प्लवगसत्तमाः ॥ १३ ॥

सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद तथा नील आदि प्रायः सभी प्रमुख वानरोंने उस जलसे अपनी-अपनी आँखें धोयीं ॥ १३ ॥

तथा समभवच्चापि यदुवाच विभीषणः ।
क्षणेनातीन्द्रियाण्येषां चक्षूंष्यासन् युधिष्ठिर ॥ १४ ॥

युधिष्ठिर ! जैसा विभीषणने बताया था, उसका वैसा ही प्रभाव देखनेमें आया । इन सबकी आँखें क्षणभरमें अतीन्द्रिय वस्तुओंका साक्षात्कार करनेवाली हो गयीं ॥ १४ ॥

इन्द्रजित् कृतकर्मा च पित्रे कर्म तदाऽऽत्मनः ।
निवेद्य पुनरागच्छत् त्वरयाऽऽजिशिरः प्रति ॥ १५ ॥

इन्द्रजित्ने उस दिन युद्धमें जो पराक्रम कर दिखाया था, अपने उस वीरोचित कर्मको पितासे बताकर वह पुनः युद्धके मुहानेकी ओर लौटने लगा ॥ १५ ॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं पुनरेव युयुत्सया ।
अभिदुद्राव सौमित्रिर्विभीषणमते स्थितः ॥ १६ ॥

उसे क्रोधमें भरकर पुनः युद्धकी इच्छासे आते देख विभीषणकी सम्मतिसे लक्ष्मणने उसपर धावा किया ॥ १६ ॥

अकृताह्निकमेवैनं जिघांसुर्जितकाशिनम् ।
शरैर्जघान संक्रुद्धः कृतसंज्ञोऽथ लक्ष्मणः ॥ १७ ॥

इन्द्रजित् विजयके उल्लाससे सुशोभित हो रहा था । अभी उसने नित्यकर्म भी नहीं किया था, उसी अवस्थामें सचेत हुए लक्ष्मणने कुपित होकर उसे मार डालनेकी इच्छासे उसपर बाणोंद्वारा प्रहार करना आरम्भ किया ॥ १७ ॥

तयोः समभवद् युद्धं तदान्योन्यं जिगीषतोः ।
अतीव चित्रमाश्चर्यं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ १८ ॥

वे दोनों ही एक-दूसरेको जीतनेके लिये उत्सुक थे । उस समय उनमें इन्द्र और प्रह्लादकी भाँति अत्यन्त अद्भुत तथा आश्चर्यजनक युद्ध होने लगा ॥ १८ ॥

अविध्यदिन्द्रजित् तीक्ष्णैः सौमित्रिं मर्मभेदिभिः ।
सौमित्रिश्चानलस्पर्शैरविध्यद् रावणिं शरैः ॥ १९ ॥

इन्द्रजित्ने तीखे तथा मर्मभेदी बाणोंद्वारा सुमित्राकुमार लक्ष्मणको बींध डाला । इसी प्रकार लक्ष्मणने भी अग्निके समान दाहक स्पर्शवाले तीखे सायकोंद्वारा रावणकुमार इन्द्रजित्को घायल कर दिया ॥ १९ ॥

सौमित्रिशरसंस्पर्शाद् रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
असृजल्लक्ष्मणायाष्टौ शरानाशीविषोपमान् ॥ २० ॥

लक्ष्मणके बाणोंकी चोट खाकर रावणकुमार क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा । उसने उनके ऊपर विषधर सर्पोंके समान विषैले आठ बाण छोड़े ॥ २० ॥

तस्यासून् पावकस्पर्शैः सौमित्रिः पत्त्रिभिस्त्रिभिः ।
यथा निरहरद् वीरस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ २१ ॥

वीर सुमित्राकुमारने अग्निके समान दाहक तीन बाणोंद्वारा जिस प्रकार इन्द्रजित्के प्राण लिये, वह बताता हूँ, सुनो ॥ २१ ॥

एकेनास्य धनुष्मन्तं बाहुं देहादपातयत् ।
द्वितीयेन सनाराचं भुजं भूमौ न्यपातयत् ॥ २२ ॥

एक बाणद्वारा उन्होंने इन्द्रजित्की धनुष धारण करनेवाली भुजाको काटकर शरीरसे अलग कर दिया । दूसरे बाणद्वारा नाराच लिये हुए उसकी दूसरी भुजाको धराशायी कर दिया ॥ २२ ॥

तृतीयेन तु बाणेन पृथुधारेण भास्वता ।
जहार सुनसं चापि शिरो भ्राजिष्णुकुण्डलम् ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् मोटी धारवाले और चमकीले तीसरे बाणसे

उन्होंने सुन्दर नासिका और शोभाशाली कुण्डलोंसे विभूषित शत्रुके मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया ॥ २३ ॥

विनिकृत्तभुजस्कन्धं कबन्धं भीमदर्शनम् ।
तं हत्वा सूतमप्यस्त्रैर्जघान बलिनां वरः ॥ २४ ॥

भुजाओं और कंधोंके कट जानेसे उसका धड़ बड़ा भयंकर दिखायी देता था। इन्द्रजित्‌को मारकर बलवानोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मणने अपने अस्त्रोंद्वारा उसके सारथिको भी मार गिराया ॥ २४ ॥

लङ्कां प्रवेशयामासुस्तं रथं वाजिनस्तदा ।
ददर्श रावणस्तं च रथं पुत्रविनाकृतम् ॥ २५ ॥
स पुत्रं निहतं ज्ञात्वा त्रासात् सम्भ्रान्तमानसः ।
रावणः शोकमोहार्तो वैदेहीं हन्तुमुद्यतः ॥ २६ ॥

उस समय घोड़ोंने उस ही खाली रथको लङ्कापुरीमें पहुँचाया। रावणने देखा, मेरे पुत्रका रथ उसके बिना ही लौट आया है। तब पुत्रको मारा गया जान भयके मारे रावणका मन उद्भ्रान्त हो उठा। वह शोक और मोहसे आतुर होकर विदेहनन्दिनी सीताको मार डालनेके लिये उद्यत हो गया ॥ २५-२६ ॥

अशोकवनिकास्थां तां रामदर्शनलालसाम् ।
खड्गमादाय दुष्टात्मा जवेनाभिपपात ह ॥ २७ ॥

दुष्टात्मा दशानन हाथमें तलवार लेकर अशोकवाटिकामें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसासे बैठी हुई सीताजीके पास बड़े वेगसे दौड़ा गया ॥ २७ ॥

तं दृष्ट्वा तस्य दुर्बुद्धेरविन्ध्यः पापनिश्चयम् ।
शमयामास संक्रुद्धं श्रूयतां येन हेतुना ॥ २८ ॥

दूषित बुद्धिवाले उस निशाचरके इस पापपूर्ण निश्चयको जानकर मन्त्री अविन्ध्यने समझा-बुझाकर उसका क्रोध शान्त किया। जिस युक्तिसे उसने रावणको शान्त किया, वह बताता हूँ, सुनो— ॥ २८ ॥

महाराज्ये स्थितो दीप्ते न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ।
हतैवैषा यदा स्त्री च बन्धनस्था च ते वशे ॥ २९ ॥

'राक्षसराज ! आप लङ्काके समुज्ज्वल साम्राज्य-पदपर विराजमान होकर एक अबलाको न मारें। यह स्त्री होकर आपके वशमें पड़ी है, आपके घरमें कैद है; ऐसी दशामें यह तो मरी हुई है ॥ २९ ॥

न चैषा देहभेदेन हता स्यादिति मे मतिः ।
जहि भर्तारमेवास्या हते तस्मिन् हता भवेत् ॥ ३० ॥

'इसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर देनेसे ही इसका वध नहीं होगा, ऐसा मेरा विचार है। इसके पतिको ही मार डालिये। उसके मारे जानेपर यह स्वतः मर जायगी ॥ ३० ॥

न हि ते विक्रमे तुल्यः साक्षादपि शतक्रतुः ।
असकृद्धि त्वया सेन्द्रास्त्रासितास्त्रिदशा युधि ॥ ३१ ॥

'साक्षात् इन्द्र भी पराक्रममें आपकी समानता नहीं कर सकते। आपने अनेक बार युद्धमें इन्द्रसहित संपूर्ण देवताओंको भयभीत (एवं पराजित) किया है' ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैरविन्ध्यो रावणं तदा ।
क्रुद्धं संशमयामास जगृहे च स तद्वचः ॥ ३२ ॥

इस तरह अनेक प्रकारके वचनोंद्वारा अविन्ध्यने रावणका क्रोध शान्त किया और रावणने भी उसकी बात मान ली ॥ ३२ ॥

निर्याणे स मतिं कृत्वा निधायासिं क्षपाचरः ।
आज्ञापयामास तदा रथो मे कल्प्यतामिति ॥ ३३ ॥

फिर उस निशाचरने युद्धके लिये प्रस्थान करनेका निश्चय करके तलवार रख दी और आज्ञा दी—'मेरा रथ तैयार किया जाय' ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि इन्द्रजिद्वधे एकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें इन्द्रजित्-वधविषयक दो सौ नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८९ ॥

नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राम और रावणका युद्ध तथा रावणका वध

मार्कण्डेय उवाच

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः प्रिये पुत्रे निपातिते ।
निर्ययौ रथमास्थाय हेमरत्नविभूषितम् ॥ १ ॥
स वृतो राक्षसैर्घोरैर्विविधायुधपाणिभिः ।
अभिदुद्राव रामं स योधयन् हरियूथपान् ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! अपने प्रिय पुत्र इन्द्रजित्‌के मारे जानेपर दशमुख रावणका क्रोध बहुत बढ़ गया। वह सुवर्ण तथा रत्नोंसे विभूषित रथपर बैठकर लङ्कापुरीसे बाहर निकला। हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले भयंकर राक्षस उसे घेरकर चले। वह वानर-यूथपतियोंसे युद्ध करता हुआ श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दौड़ा ॥ १-२ ॥

तमाद्रवन्तं संक्रुद्धं मैन्दनीलनलाङ्गदाः ।
हनूमाञ्जाम्बवांश्चैव ससैन्याः पर्यवारयन् ॥ ३ ॥

उसे क्रोधपूर्वक आक्रमण करते देख मैन्द, नील, नल, अङ्गद, हनुमान् और जाम्बवान्‌ने सेनासहित आगे बढ़कर उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३ ॥

ते दशग्रीवसैन्यं तदृक्षवानरपुङ्गवाः ।
द्रुमैर्विध्वंसयांचक्रुर्दशग्रीवस्य पश्यतः ॥ ४ ॥

उन रीछ और वानर-सेनापतियोंने दशाननके देखते-देखते वृक्षोंकी मारसे उसकी सेनाका संहार आरम्भ कर दिया ॥ ४ ॥

ततः स सैन्यमालोक्य वध्यमानमरातिभिः ।
मायावी चासृजन्मायां रावणो राक्षसाधिपः ॥ ५ ॥

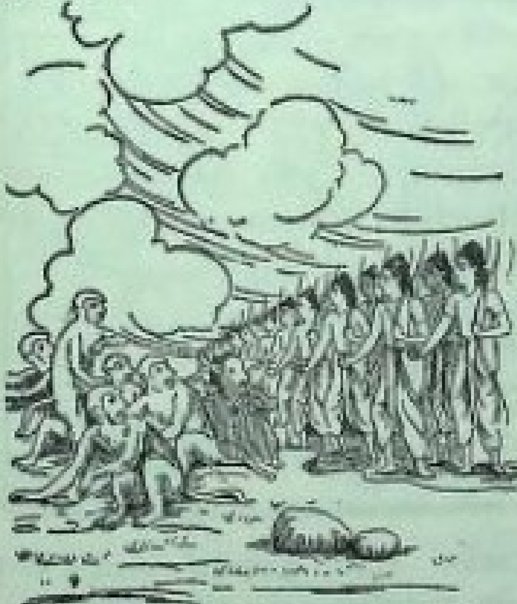
अपनी सेनाको शत्रुओंद्वारा मारी जाती देख मायावी राक्षसराज रावणने माया प्रकट की ॥ ५ ॥

तस्य देहविनिष्क्रान्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ।
राक्षसाः प्रत्यदृश्यन्त शरशक्त्यृष्टिपाणयः ॥ ६ ॥

उसके शरीरसे सैकड़ों और हजारों राक्षस प्रकट होकर हाथोंमें बाण, शक्ति तथा ऋष्टि आदि आयुध लिये दिखायी देने लगे ॥ ६ ॥

तान् रामो जघ्निवान् सर्वान् दिव्येनास्त्रेण राक्षसान् ।
अथ भूयोऽपि मायां स व्यदधाद् राक्षसाधिपः ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने अपने दिव्य अस्त्रके द्वारा उन सब राक्षसोंको नष्ट कर दिया । तब राक्षसराजने पुनः मायाकी सृष्टि की ॥ ७ ॥



कृत्वा रामस्य रूपाणि लक्ष्मणस्य च भारत ।
अभिदुद्राव रामं च लक्ष्मणं च दशाननः ॥ ८ ॥

भारत ! दशाननने श्रीराम और लक्ष्मणके ही बहुत-से रूप धारण करके श्रीराम और लक्ष्मणपर धावा किया ॥ ८ ॥

ततस्ते राममार्च्छन्तो लक्ष्मणं च क्षपाचराः ।
अभिपेतुस्तदा रामं प्रगृहीतशरासनाः ॥ ९ ॥

तदनन्तर वे राक्षस हाथोंमें धनुष-बाण लिये श्रीराम और लक्ष्मणको पीड़ा देते हुए उनपर टूट पड़े ॥ ९ ॥

तां दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य मायामिक्ष्वाकुनन्दनः ।
उवाच रामं सौमित्रिरसम्भ्रान्तो बृहद् वचः ॥ १० ॥

राक्षसराज रावणकी उस मायाको देखकर इक्ष्वाकुकुल-का आनन्द बढ़ानेवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मणको तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उन्होंने श्रीरामसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही— ॥ १० ॥

जहीमान् राक्षसान् पापानात्मनः प्रतिरूपकान् ।
जघान रामस्तांश्चान्यानात्मनः प्रतिरूपकान् ॥ ११ ॥

'भगवन् ! अपने ही समान आकारवाले इन पापी राक्षसों-को मार डालिये ।' तब श्रीरामने रावणकी मायासे निर्मित अपने ही समान रूप धारण करनेवाले उन सबको तथा अन्य राक्षसोंको भी मार डाला ॥ ११ ॥

ततो हर्यश्वयुक्तेन रथेनादित्यवर्चसा ।
उपतस्थे रणे रामं मातलिः शक्रसारथिः ॥ १२ ॥

इसी समय इन्द्रका सारथि मातलि हरे रंगके घोड़ोंसे जुते हुए सूर्यके समान तेजस्वी रथके साथ उस रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रजीके समीप आ पहुँचा ॥ १२ ॥

मातलिरुवाच

अयं हर्यश्वयुग जैत्रो मघोनः स्यन्दनोत्तमः ।
अनेन शक्रः काकुत्स्थ समरे दैत्यदानवान् ॥ १३ ॥
शतशः पुरुषव्याघ्र रथोदारेण जघ्निवान् ।
तदनेन नरव्याघ्र मया यत्तेन संयुगे ॥ १४ ॥
स्यन्दनेन जहि क्षिप्रं रावणं मा चिरं कृथाः ।

मातलि बोला—पुरुषसिंह श्रीराम ! यह हरे रंगके घोड़ोंसे जुता हुआ विजयशाली उत्तम रथ देवराज इन्द्रका है । इस विशाल रथके द्वारा इन्द्रने सैकड़ों दैत्यों और दानवोंका समराङ्गणमें संहार किया है । नरश्रेष्ठ ! मेरेद्वारा संचालित इस रथपर बैठकर आप युद्धमें रावणको शीघ्र मार डालिये, विलम्ब न कीजिये ॥ १३-१४½ ॥

इत्युक्तो राघवस्तथ्यं वचोऽशङ्कत मातलेः ॥ १५ ॥
मायैषा राक्षसस्येति तमुवाच विभीषणः ।
नेयं माया नरव्याघ्र रावणस्य दुरात्मनः ॥ १६ ॥

मातलिके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उसकी बातपर इसलिये संदेह किया कि कहीं यह भी राक्षसकी माया ही न हो । तब विभीषणने उनसे कहा—'पुरुषसिंह ! यह दुरात्मा रावणकी माया नहीं है ॥ १५-१६ ॥

तदास्तिष्ठ रथं शीघ्रमिममैन्द्रं महाद्युते ।
ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थस्तथेत्युक्त्वा विभीषणम् ॥ १७ ॥
रथेनाभिपपाताथ दशग्रीवं रुषान्वितः ।

'महाद्युते ! आप शीघ्र इन्द्रके इस रथपर आरूढ़ होइये ।' तब श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्नतापूर्वक विभीषणसे कहा—'ठीक है ।' यों कहकर उन्होंने रथपर आरूढ़ हो बड़े रोषके साथ दशमुख रावणपर आक्रमण किया ॥ १७½ ॥

हाहाकृतानि भूतानि रावणे समभिद्रुते ॥ १८ ॥
सिंहनादाः सपटहा दिवि दिव्यास्तथानदन् ।
दशकन्धरराजसून्वोस्तथा युद्धमभून्महत् ॥ १९ ॥

रावणपर श्रीरामकी चढ़ाई होते ही समस्त प्राणी हाहाकार कर उठे, देवलोकमें नगारे बज उठे और जोर-जोरसे सिंहनाद होने लगा । दशकन्धर रावण तथा राजकुमार श्रीराममें उस समय महान् युद्ध छिड़ गया ॥ १८-१९ ॥

अलब्धोपममन्यत्र तयोरेव तथाभवत् ।
स रामाय महाघोरं विससर्ज निशाचरः ॥ २० ॥
शूलमिन्द्राशनिप्रख्यं ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ।
तच्छूलं सत्वरं रामश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ २१ ॥

उस युद्धकी संसारमें अन्यत्र कहीं उपमा नहीं थी । उनका वह संग्राम उन्हींके संग्रामके समान था । निशाचर रावणने श्रीरामपर एक त्रिशूल चलाया, जो उठे हुए इन्द्रके वज्र तथा ब्रह्मदण्डके समान अत्यन्त भयंकर था; परंतु श्रीरामने तत्काल अपने तीखे बाणोंद्वारा उस त्रिशूलके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २०-२१ ॥

तद् दृष्ट्वा दुष्करं कर्म रावणं भयमाविशत् ।
ततः क्रुद्धः ससर्जाशु दशग्रीवः शिताञ्छरान् ॥ २२ ॥

उनका वह दुष्कर कर्म देखकर दशानन रावणके मनमें भय समा गया । फिर कुपित होकर उसने तुरंत ही तीखे सायकोंकी वर्षा आरम्भ की ॥ २२ ॥

सहस्रायुतशो रामे शस्त्राणि विविधानि च ।
ततो भुशुण्डीः शूलानि मुसलानि परश्वधान् ॥ २३ ॥
शक्तीश्च विविधाकाराः शतघ्नीश्च शितान् क्षुरान् ।

उस समय श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर भाँति-भाँतिके हजारों शस्त्र गिरने लगे तथा भुशुण्डी, शूल, मुसल, फरसे, नाना प्रकारकी शक्तियों, शतघ्नी और तीखी धारवाले बाणोंकी वृष्टि होने लगी ॥ २३½ ॥

तां मायां विकृतां दृष्ट्वा दशग्रीवस्य रक्षसः ॥ २४ ॥
भयात् प्रदुद्रुवुः सर्वे वानराः सर्वतोदिशम् ।

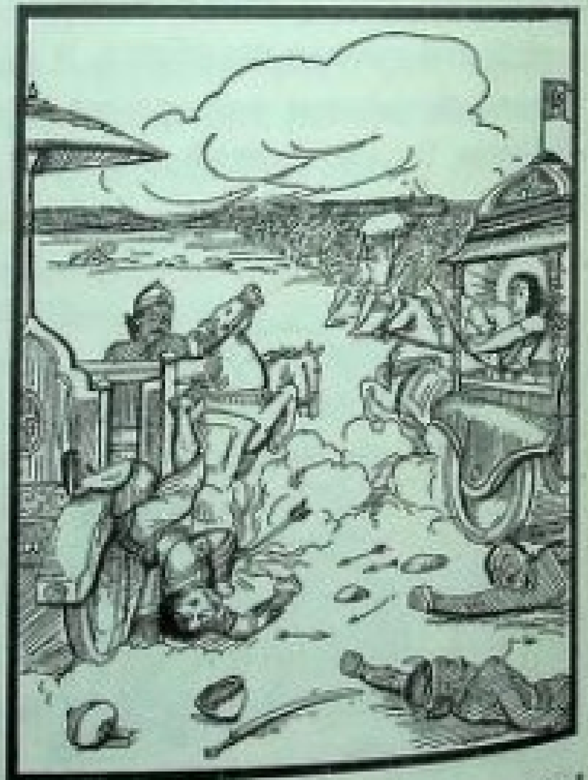
राक्षस दशाननकी उस विकराल मायाको देखकर सब वानर भयके मारे चारों दिशाओंमें भाग चले ॥ २४½ ॥

ततः सुपत्रं सुमुखं हेमपुङ्खं शरोत्तमम् ॥ २५ ॥
तूणादादाय काकुत्स्थो ब्रह्मास्त्रेण युयोज ह ।
तं बाणवर्यं रामेण ब्रह्मास्त्रेणानुमन्त्रितम् ॥ २६ ॥
जहृषुर्देवगन्धर्वा दृष्ट्वा शक्रपुरोगमाः ।
अल्पावशेषमायुश्च ततोऽमन्यन्त रक्षसः ॥ २७ ॥
ब्रह्मास्त्रोदीरणाच्छत्रोर्देवदानवकिंनराः ।

तब श्रीरामचन्द्रजीने सोनेके सुन्दर पंख तथा उत्तम अग्रभागवाले एक श्रेष्ठ बाणको तरकससे निकालकर उसे ब्रह्मास्त्रद्वारा अभिमन्त्रित किया । श्रीरामद्वारा ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित किये हुए उस उत्तम बाणको देखकर इन्द्र आदि देवताओं तथा गन्धर्वोंके हर्षकी सीमा न रही । शत्रुके प्रति श्रीरामके मुखसे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग होता देख देवता, दानव और किंनर यह समझ गये कि अब इस राक्षसकी आयु बहुत थोड़ी रह गयी है ॥ २५-२७½ ॥

ततः ससर्ज तं रामः शरमप्रतिमौजसम् ॥ २८ ॥
रावणान्तकरं घोरं ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने उठे हुए ब्रह्मदण्डके समान भयंकर तथा अप्रतिम तेजस्वी उस रावणविनाशक बाणको छोड़ दिया ॥ २८½ ॥



मुक्तमात्रेण रामेण दूराकृष्टेन भारत ॥ २९ ॥
स तेन राक्षसश्रेष्ठः सरथः साश्वसारथिः ।
प्रजज्वाल महाज्वालेनाग्निनाभिपरिप्लुतः ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर ! श्रीरामद्वारा धनुषको दूरतक खींचकर छोड़े हुए उस बाणके लगते ही राक्षसराज रावण रथ, घोड़े और सारथिसहित इस प्रकार जलने लगा मानो भयंकर लपटोंवाली आगके लपेटमें आ गया हो ॥ २९-३० ॥

ततः प्रहृष्टास्त्रिदशाः सहगन्धर्वचारणाः ।
निहतं रावणं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ३१ ॥

इस प्रकार अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके हाथोंसे रावणको मारा गया देख देवता, गन्धर्व तथा चारण बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३१ ॥

तत्यजुस्तं महाभागं पञ्च भूतानि रावणम् ।
भ्रंशितः सर्वलोकेभ्यः स हि ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ ३२ ॥

तदनन्तर पाँचों भूतोंने उस महान् भाग्यशाली रावणको त्याग दिया । ब्रह्मास्त्रके तेजसे दग्ध होकर वह सम्पूर्ण लोकोंसे भ्रष्ट हो गया ॥ ३२ ॥

शरीरधातवो ह्यस्य मांसं रुधिरमेव च ।
नेशुर्ब्रह्मास्त्रनिर्दग्धा न च भस्माप्यदृश्यत ॥ ३३ ॥

उसके शरीरके धातु, मांस तथा रक्त भी ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होकर नष्ट हो गये । उसकी राखतक नहीं दिखायी दी ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रावणवधे नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें रावणवधविषयक दो सौ नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९० ॥

एकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीरामका सीताके प्रति संदेह, देवताओंद्वारा सीताकी शुद्धिका समर्थन, श्रीरामका दल-बलसहित लङ्कासे प्रस्थान एवं किष्किन्धा होते हुए अयोध्यामें पहुँचकर भरतसे मिलना तथा राज्यपर अभिषिक्त होना

मार्कण्डेय उवाच

स हत्वा रावणं क्षुद्रं राक्षसेन्द्रं सुरद्विषम् ।
बभूव हृष्टः ससुहृद् रामः सौमित्रिणा सह ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार नीच स्वभाववाले देवद्रोही राक्षसराज रावणका वध करके भगवान् श्रीराम अपने मित्रों तथा लक्ष्मणके साथ बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

ततो हते दशग्रीवे देवाः सर्षिपुरोगमाः ।
आशीर्भिर्जययुक्ताभिरानर्चुस्तं महाभुजम् ॥ २ ॥

दशाननके मारे जानेपर देवता तथा महर्षिगण जययुक्त आशीर्वाद देते हुए उन महाबाहुकी पूजा एवं प्रशंसा करने लगे ॥ २ ॥

रामं कमलपत्राक्षं तुष्टुवुः सर्वदेवताः ।
गन्धर्वाः पुष्पवर्षैश्च वाग्भिश्च त्रिदशालयाः ॥ ३ ॥

स्वर्गवासी सम्पूर्ण देवताओं तथा गन्धर्वोंने फूलोंकी वर्षा करते हुए उत्तम वाणीद्वारा कमलनयन भगवान् श्रीरामका स्तवन किया ॥ ३ ॥

पूजयित्वा यथा रामं प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।
तन्महोत्सवसंकाशमासीदाकाशमच्युत ॥ ४ ॥

श्रीरामकी भलीभाँति पूजा करके वे सब जैसे आये थे, उसी प्रकार लौट गये । युधिष्ठिर ! उस समय आकाश महान् उत्सवसमारोहसे भरा-सा जान पड़ता था ॥ ४ ॥

ततो हत्वा दशग्रीवं लङ्कां रामो महायशाः ।
विभीषणाय प्रददौ प्रभुः परपुरंजयः ॥ ५ ॥

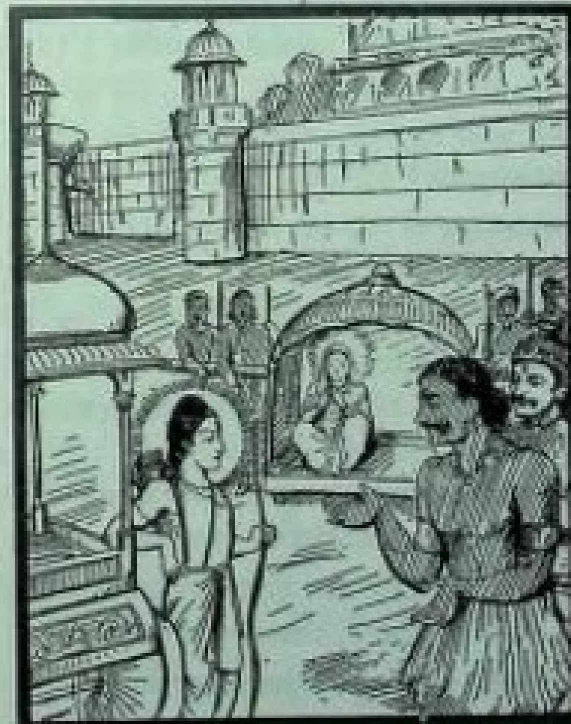
तत्पश्चात् शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले महायशस्वी भगवान् श्रीरामने दशानन रावणका वध करनेके अनन्तर लङ्काका राज्य विभीषणको दे दिया ॥ ५ ॥

ततः सीतां पुरस्कृत्य विभीषणपुरस्कृताम् ।
अविन्ध्यो नाम सुप्रज्ञो वृद्धामात्यो विनिर्ययौ ॥ ६ ॥

इसके बाद उत्तम बुद्धिसे युक्त बूढ़े मन्त्री अविन्ध्य विभीषणसहित भगवती सीताको आगे करके लङ्कापुरीसे बाहर निकले ॥ ६ ॥

उवाच च महात्मानं काकुत्स्थं दैन्यमास्थितः ।
प्रतीच्छ देवीं सद्वृत्तां महात्मञ्जानकीमिति ॥ ७ ॥

वे ककुत्स्थकुलभूषण महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे दीनतापूर्वक बोले—'महात्मन् ! सदाचारसे सुशोभित जनककिशोरी



महारानी सीताको ग्रहण कीजिये' ॥ ७ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्मादवतीर्य रथोत्तमात्।
बाष्पेणापिहितां सीतां ददर्शेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ ८ ॥

यह सुनकर इक्ष्वाकुनन्दन भगवान् श्रीरामने उस उत्तम रथसे उतरकर सीताको देखा। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी ॥ ८ ॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं यानस्थां शोककर्शिताम्।
मलोपचितसर्वाङ्गीं जटिलां कृष्णवाससम् ॥ ९ ॥

शिबिकामें बैठी हुई सर्वाङ्गसुन्दरी सीता शोकसे दुबली हो गयी थीं। उनके समस्त अङ्गोंमें मैल जम गयी थी, सिरके बाल आपसमें चिपककर जटाके रूपमें परिणत हो गये थे और उनका वस्त्र काला पड़ गया था ॥ ९ ॥

उवाच रामो वैदेहीं परामर्शविशङ्कितः।
गच्छ वैदेहि मुक्ता त्वं यत् कार्यं तन्मया कृतम् ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके मनमें यह संदेह हुआ कि सम्भव है, सीता परपुरुषके स्पर्शसे अपवित्र हो गयी हों; अतः उन्होंने विदेहनन्दिनी सीतासे स्पष्ट वचनोंद्वारा कहा—'विदेहकुमारी! मैंने तुम्हें रावणकी कैदसे छुड़ा दिया। अब तुम जाओ। मेरा जो कर्तव्य था, उसे मैंने पूरा कर दिया ॥ १० ॥

मामासाद्य पतिं भद्रे न त्वं राक्षसवेश्मनि।
जरां व्रजेथा इति मे निहतोऽसौ निशाचरः ॥ ११ ॥

'भद्रे! मुझ-जैसे पतिको पाकर तुम्हें वृद्धावस्थातक किसी राक्षसके घरमें न रहना पड़े, यही सोचकर मैंने उस निशाचरका वध किया है ॥ ११ ॥

कथं ह्यस्मद्विधो जातु जानन् धर्मविनिश्चयम्।
परहस्तगतां नारीं मुहूर्तमपि धारयेत् ॥ १२ ॥

'धर्मके सिद्धान्तको जाननेवाला मेरे-जैसा कोई भी पुरुष दूसरेके हाथमें पड़ी हुई नारीको मुहूर्तभरके लिये भी कैसे ग्रहण कर सकता है? ॥ १२ ॥

सुवृत्तामसुवृत्तां वाप्यहं त्वामद्य मैथिलि।
नोत्सहे परिभोगाय श्वावलीढं हविर्यथा ॥ १३ ॥

'मिथिलेशनन्दिनि! तुम्हारा आचार-विचार शुद्ध रह गया हो अथवा अशुद्ध, अब मैं तुम्हें अपने उपयोगमें नहीं ला सकता—ठीक उसी तरह, जैसे कुत्तेके चाटे हुए हविष्यको कोई भी ग्रहण नहीं करता' ॥ १३ ॥

ततः सा सहसा बाला तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः।
पपात देवी व्यथिता निकृत्ता कदली यथा ॥ १४ ॥

सहसा यह कठोर वचन सुनकर देवी सीता व्यथित हो कटे हुए केलेके वृक्षकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ १४ ॥

योऽप्यस्या हर्षसम्भूतो मुखरागस्तदाभवत्।
क्षणेन स पुनर्नष्टो निःश्वास इव दर्पणे ॥ १५ ॥

जैसे श्वास लेनेसे दर्पणमें पड़ा हुआ मुखका प्रतिबिम्ब मलिन हो जाता है, उसी प्रकार सीताके मुखपर उस समय जो हर्षजनित कान्ति छा रही थी, वह एक ही क्षणमें फिर विलीन हो गयी ॥ १५ ॥

ततस्ते हरयः सर्वे तच्छ्रुत्वा रामभाषितम्।
गतासुकल्पा निश्चेष्टा बभूवुः सहलक्ष्मणाः ॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह कथन सुनकर समस्त वानर तथा लक्ष्मण सबके सब मरे हुएके समान निश्चेष्ट हो गये ॥ १६ ॥

ततो देवो विशुद्धात्मा विमानेन चतुर्मुखः।
पद्मयोनिर्जगत्स्रष्टा दर्शयामास राघवम् ॥ १७ ॥

इसी समय विशुद्ध अन्तःकरणवाले कमलयोनि जगत्स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्माजीने विमानद्वारा वहाँ आकर श्रीरामचन्द्रजीको दर्शन दिया ॥ १७ ॥

शक्रश्चाग्निश्च वायुश्च यमो वरुण एव च।
यक्षाधिपश्च भगवांस्तथा सप्तर्षयोऽमलाः ॥ १८ ॥

साथ ही इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण, यक्षराज भगवान् कुबेर तथा निर्मल चित्तवाले सप्तर्षिगण भी वहाँ आ गये ॥ १८ ॥

राजा दशरथश्चैव दिव्यभास्वरमूर्तिमान्।
विमानेन महार्हेण हंसयुक्तेन भास्वता ॥ १९ ॥

इनके सिवा हंसोंसे युक्त एक बहुमूल्य तेजस्वी विमानद्वारा दिव्य प्रकाशमय स्वरूप धारण किये स्वयं राजा दशरथ भी वहाँ पधारे ॥ १९ ॥

ततोऽन्तरिक्षं तत् सर्वं देवगन्धर्वसंकुलम्।
शुशुभे तारकाचित्रं शरदीव नभस्तलम् ॥ २० ॥

उस समय देवताओं और गन्धर्वोंसे भरा हुआ वह सम्पूर्ण अन्तरिक्ष इस प्रकार शोभा पाने लगा, मानो असंख्य तारागणोंसे चित्रित शरद्-ऋतुका आकाश हो ॥ २० ॥

तत उत्थाय वैदेही तेषां मध्ये यशस्विनी।
उवाच वाक्यं कल्याणी रामं पृथुलवक्षसम् ॥ २१ ॥

तब उन सबके बीचमें खड़ी होकर कल्याणमयी यशस्विनी सीताने चौड़ी छातीवाले भगवान् श्रीरामसे इस प्रकार कहा—॥ २१ ॥

राजपुत्र न ते दोषं करोमि विदिता हि ते।
गतिः स्त्रीणां नराणां च शृणु चेदं वचो मम ॥ २२ ॥

'राजपुत्र! मैं आपको दोष नहीं देती, क्योंकि आप स्त्रियों और पुरुषोंकी कैसी गति है, यह अच्छी तरह जानते हैं। केवल मेरी यह बात सुन लीजिये ॥ २२ ॥

अन्तश्चरति भूतानां मातरिश्वा सदागतिः।
स मे विमुञ्चतु प्राणान् यदि पापं चराम्यहम् ॥ २३ ॥

'निरन्तर संचरण करनेवाले वायुदेव समस्त प्राणियोंके

भीतर विचरते हैं। यदि मैंने कोई पापाचार किया हो तो वे वायुदेवता मेरे प्राणोंका परित्याग कर दें ॥ २३ ॥

अग्निरापस्तथाऽऽकाशं पृथिवी वायुरेव च।
विमुञ्चन्तु मम प्राणान् यदि पापं चराम्यहम् ॥ २४ ॥

'यदि मैं पापका आचरण करती होऊँ तो अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी और वायु—ये सब मिलकर मुझसे मेरे प्राणोंका वियोग करा दें ॥ २४ ॥

यथाहं त्वदृते वीर नान्यं स्वप्नेऽप्यचिन्तयम्।
तथा मे देवनिर्दिष्टस्त्वमेव हि पतिर्भव ॥ २५ ॥

'वीर! यदि मैंने आपके सिवा दूसरे किसी पुरुषका स्वप्नमें भी चिन्तन न किया हो तो देवताओंके दिये हुए एकमात्र आप ही मेरे पति हों' ॥ २५ ॥

ततोऽन्तरिक्षे वागासीत् सुभगा लोकसाक्षिणी।
पुण्या संहर्षणी तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर आकाशमें सब लोगोंको साक्षी देती हुई एक सुन्दर वाणी उच्चरित हुई, जो परम पवित्र होनेके साथ ही उन महामना वानरोंको भी हर्ष प्रदान करनेवाली थी ॥ २६ ॥

वायुरुवाच

भो भो राघव सत्यं वै वायुरस्मि सदागतिः।
अपापा मैथिली राजन् संगच्छ सह भार्यया ॥ २७ ॥

(उस आकाशवाणीके रूपमें) वायुदेवता बोले—रघुनन्दन! मैं सदा विचरण करनेवाला वायुदेवता हूँ। सीताने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। राजन्! मिथिलेश-कुमारी सर्वथा पापशून्य हैं। आप अपनी इस पत्नीसे निःसंकोच होकर मिलिये ॥ २७ ॥

अग्निरुवाच

अहमन्तःशरीरस्थो भूतानां रघुनन्दन।
सुसूक्ष्ममपि काकुत्स्थ मैथिली नापराध्यति ॥ २८ ॥

अग्निदेवने कहा—रघुनन्दन! मैं समस्त प्राणियोंके शरीरमें रहनेवाला अग्नि हूँ। मुझे मालूम है कि मिथिलेश-कुमारीके द्वारा कभी सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अपराध नहीं हुआ है ॥ २८ ॥

वरुण उवाच

रसा वै मत्प्रसूता हि भूतदेहेषु राघव।
अहं वै त्वां प्रब्रवीमि मैथिली प्रतिगृह्यताम् ॥ २९ ॥

वरुणदेवने कहा—श्रीराम! समस्त प्राणियोंके शरीरोंमें जो जलतत्त्व है, वह मुझसे ही उत्पन्न हुआ है। अतः मैं तुमसे कहता हूँ, मिथिलेशकुमारी निष्पाप है, इसे ग्रहण करो ॥ २९ ॥

ब्रह्मोवाच

पुत्र नैतदिहाश्चर्यं त्वयि राजर्षिधर्मणि।
साधो सद्वृत्त काकुत्स्थ शृणु चेदं वचो मम ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजी बोले—वत्स! तुम राजर्षियोंके धर्मपर चलनेवाले हो; अतः तुममें ऐसा सद्विचार होना आश्चर्यकी बात नहीं है। साधु सदाचारी श्रीराम! तुम मेरी यह बात सुनो ॥ ३० ॥

शत्रुरेष त्वया वीर देवगन्धर्वभोगिनाम्।
यक्षाणां दानवानां च महर्षीणां च पातितः ॥ ३१ ॥

वीरवर! यह रावण देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष, दानव तथा महर्षियोंका भी शत्रु था। इसे तुमने मार गिराया है ॥ ३१ ॥

अवध्यः सर्वभूतानां मत्प्रसादात् पुराभवत्।
कस्माच्चित् कारणात् पापः कञ्चित् कालमुपेक्षितः ॥ ३२ ॥

पूर्वकालमें मेरे ही प्रसादसे यह समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य हो गया था। किसी कारणवश ही कुछ कालतक इस पापीकी उपेक्षा की गयी थी ॥ ३२ ॥

वधार्थमात्मनस्तेन हृता सीता दुरात्मना।
नलकूबरशापेन रक्षा चास्याः कृता मया ॥ ३३ ॥

दुरात्मा रावणने अपने वधके लिये ही सीताका अपहरण किया था। नलकूबरके शापद्वारा मैंने सीताकी रक्षाका प्रबन्ध कर दिया था ॥ ३३ ॥

यदि ह्यकामां सेवेत स्त्रियमन्यामपि ध्रुवम्।
शतधास्य फलेन्मूर्धा इत्युक्तः सोऽभवत् पुरा ॥ ३४ ॥

पूर्वकालमें रावणको यह शाप दिया गया था कि यदि वह उसे न चाहनेवाली किसी परायी स्त्रीका बलपूर्वक सेवन करेगा तो उसके मस्तकके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे ॥ ३४ ॥

नात्र शङ्का त्वया कार्या प्रतीच्छेमां महाद्युते।
कृतं त्वया महत् कार्यं देवानाममरप्रभ ॥ ३५ ॥

अतः महातेजस्वी श्रीराम! तुम्हें सीताके विषयमें कोई शंका नहीं करनी चाहिये। इसे ग्रहण करो। देवताओंके समान तेजस्वी वीर! तुमने रावणको मारकर देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया है ॥ ३५ ॥

दशरथ उवाच

प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पिता दशरथोऽस्मि ते।
अनुजानामि राज्यं च प्रशाधि पुरुषोत्तम ॥ ३६ ॥

दशरथजी बोले—वत्स! मैं तुम्हारा पिता दशरथ हूँ, तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। पुरुषोत्तम! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि अब तुम अयोध्याका राज्य करो ॥ ३६ ॥

राम उवाच

अभिवादये त्वां राजेन्द्र यदि त्वं जनको मम।
गमिष्यामि पुरीं रम्यामयोध्यां शासनात् तव॥ ३७॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—राजेन्द्र! यदि आप मेरे पिता हैं तो मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपकी आज्ञासे अब मैं रमणीय अयोध्यापुरीको लौट जाऊँगा॥ ३७॥

मार्कण्डेय उवाच

तमुवाच पिता भूयः प्रहृष्टो भरतर्षभ।
गच्छायोध्यां प्रशाधीति रामं रक्तान्तलोचनम्॥ ३८॥
सम्पूर्णानीह वर्षाणि चतुर्दश महाद्युते।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! तदनन्तर पिता दशरथने अत्यन्त प्रसन्न होकर कुछ-कुछ लाल नेत्रोंवाले श्रीरामचन्द्रजीसे पुनः कहा—'महाद्युते! तुम्हारे वनवासके चौदह वर्ष पूरे हो गये हैं। अब तुम अयोध्या जाओ और वहाँका शासन अपने हाथमें लो'॥ ३८½॥

ततो देवान् नमस्कृत्य सुहृद्भिरभिनन्दितः॥ ३९॥
महेन्द्र इव पौलोम्या भार्यया स समेयिवान्।

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने देवताओंको नमस्कार किया और सुहृदोंसे अभिनन्दित हो अपनी पत्नी सीतासे मिले, मानो इन्द्रका शचीसे मिलन हुआ हो॥ ३९½॥

ततो वरं ददौ तस्मै ह्यविन्ध्याय परंतपः॥ ४०॥
त्रिजटां चार्थमानाभ्यां योजयामास राक्षसीम्।

इसके बाद परंतप श्रीरामने अविन्ध्यको अभीष्ट वरदान दिया तथा त्रिजटा राक्षसीको धन और सम्मानसे संतुष्ट किया॥ ४०½॥

तमुवाच ततो ब्रह्मा देवैः शक्रपुरोगमैः॥ ४१॥
कौसल्यामातरिष्टांस्ते वरानद्य ददानि कान्।

यह सब हो जानेपर इन्द्र आदि देवताओंसहित ब्रह्माने भगवान् रामसे कहा—'कौसल्यानन्दन! कहो, आज मैं तुम्हें कौन-कौनसे अभीष्ट वर प्रदान करूँ?'॥ ४१½॥

वव्रे रामः स्थितिं धर्मे शत्रुभिश्चापराजयम्॥ ४२॥
राक्षसैर्निहतानां च वानराणां समुद्भवम्।

तब श्रीरामचन्द्रजीने उनसे ये वर माँगे—'मेरी धर्ममें सदा स्थिति रहे, शत्रुओंसे कभी पराजय न हो तथा राक्षसोंके द्वारा मारे गये वानर पुनः जीवित हो जायँ'॥ ४२½॥

ततस्ते ब्रह्मणा प्रोक्ते तथेति वचने तदा॥ ४३॥
समुत्तस्थुर्महाराज वानरा लब्धचेतसः।

यह सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'ऐसा ही हो।' महाराज! उनके इतना कहते ही सभी वानर चेतना प्राप्त करके जी उठे॥ ४३½॥

सीता चापि महाभागा वरं हनुमते ददौ॥ ४४॥
रामकीर्त्या समं पुत्र जीवितं ते भविष्यति।

महासौभाग्यवती सीताने भी हनुमान्‌जीको यह वर दिया—'पुत्र! जबतक इस धरातलपर भगवान् श्रीरामकी कीर्ति बनी रहेगी, तबतक तुम्हारा जीवन स्थिर रहेगा॥ ४४½॥

दिव्यास्त्वामुपभोगाश्च मत्प्रसादकृताः सदा॥ ४५॥
उपस्थास्यन्ति हनुमन्निति स्म हरिलोचन।

'पिङ्गलनयन हनुमान्! मेरी कृपासे तुम्हें सदा ही दिव्य भोग प्राप्त होते रहेंगे'॥ ४५½॥

ततस्ते प्रेक्षमाणानां तेषामक्लिष्टकर्मणाम्॥ ४६॥
अन्तर्धानं ययुर्देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः।

तदनन्तर अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले वानरोंके देखते-देखते वहाँ इन्द्र आदि सब देवता अन्तर्धान हो गये॥ ४६½॥

दृष्ट्वा रामं तु जानक्या संगतं शक्रसारथिः॥ ४७॥
उवाच परमप्रीतः सुहृन्मध्य इदं वचः।
देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषासुरभोगिनाम्॥ ४८॥
अपनीतं त्वया दुःखमिदं सत्यपराक्रम।

श्रीरामचन्द्रजीको जनकनन्दिनी सीताके साथ विराजमान देख इन्द्रसारथि मातलिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सब सुहृदोंके बीचमें इस प्रकार कहा—'सत्यपराक्रमी श्रीराम! आपने देवता, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, असुर और नाग—इन सबका दुःख दूर कर दिया है॥ ४७-४८½॥

सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः॥ ४९॥
कथयिष्यन्ति लोकास्त्वां यावद् भूमिर्धरिष्यति।

'जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा नागोंसहित सम्पूर्ण जगत्के लोग आपकी कीर्तिकथाका गान करेंगे'॥ ४९½॥

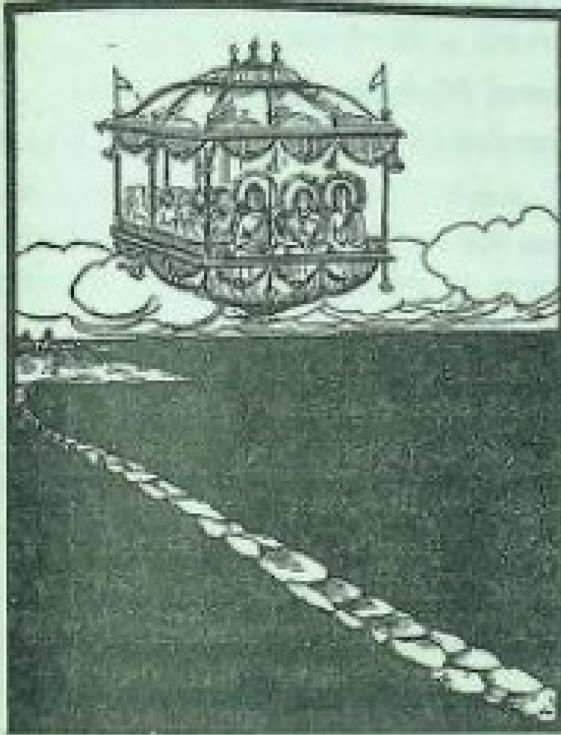
इत्येवमुक्त्वानुज्ञाप्य रामं शस्त्रभृतां वरम्॥ ५०॥
सम्पूज्यापाक्रमत् तेन रथेनादित्यवर्चसा।

ऐसा कहकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा ले उनकी पूजा करके सूर्यके समान तेजस्वी उसी रथके द्वारा मातलि स्वर्गलोकको चला गया॥ ५०½॥

ततः सीतां पुरस्कृत्य रामः सौमित्रिणा सह॥ ५१॥
सुग्रीवप्रमुखैश्चैव सहितः सर्ववानरैः।
विधाय रक्षां लङ्कायां विभीषणपुरस्कृतः॥ ५२॥
संततार पुनस्तेन सेतुना मकरालयम्।
पुष्पकेण विमानेन खेचरेण विराजता॥ ५३॥
कामगेन यथामुख्यैरमात्यैः संवृतो वशी।

तदनन्तर जितेन्द्रिय भगवान् श्रीरामने लङ्कापुरीकी सुरक्षाका प्रबन्ध करके लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सभी श्रेष्ठ

वानरों, विभीषण तथा प्रधान-प्रधान सचिवोंके साथ सीताको आगे करके इच्छानुसार चलनेवाले, आकाशचारी, शोभाशाली



पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो उन्हींके द्वारा पूर्वोक्त सेतुमार्गसे ऊपर-ही-ऊपर पुनः मकरालय समुद्रको पार किया॥ ५१–५३½ ॥

ततस्तीरे समुद्रस्य यत्र शिश्ये स पार्थिवः ॥ ५४ ॥
तत्रैवोवास धर्मात्मा सहितः सर्ववानरैः ।

समुद्रके इस पार आकर धर्मात्मा श्रीरामने पहले जहाँ शयन किया था, उसी स्थानपर सम्पूर्ण वानरोंके साथ विश्राम किया ॥ ५४½ ॥

अथैनान् राघवः काले समानीयाभिपूज्य च ॥ ५५ ॥
विसर्जयामास तदा रत्नैः संतोष्य सर्वशः ।

फिर श्रीरघुनाथजीने यथासमय सबको अपने पास बुलाकर सबका यथायोग्य आदर-सत्कार किया तथा रत्नोंकी भेंटसे संतुष्ट करके सभी वानरों और रीछोंको विदा किया ॥ ५५½ ॥

गतेषु वानरेन्द्रेषु गोपुच्छर्क्षेषु तेषु च ॥ ५६ ॥
सुग्रीवसहितो रामः किष्किन्धां पुनरागमत् ।

जब वे रीछ, श्रेष्ठ वानर और लंगूर चले गये, तब सुग्रीवसहित श्रीरामने पुनः किष्किन्धापुरीको प्रस्थान किया ॥ ५६½ ॥

विभीषणेनानुगतः सुग्रीवसहितस्तदा ॥ ५७ ॥
पुष्पकेण विमानेन वैदेह्या दर्शयन् वनम् ।
किष्किन्धां तु समासाद्य रामः प्रहरतां वरः ॥ ५८ ॥
अङ्गदं कृतकर्माणं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ।

विभीषण और सुग्रीवके साथ पुष्पक-विमानद्वारा विदेहकुमारी सीताको वनकी शोभा दिखाते हुए योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने किष्किन्धामें पहुँचकर अङ्गदको, जिन्होंने लंकाके युद्धमें महान् पराक्रम दिखाया था, युवराजके पदपर अभिषिक्त किया ॥ ५७-५८½ ॥

ततस्तैरेव सहितो रामः सौमित्रिणा सह ॥ ५९ ॥
यथागतेन मार्गेण प्रययौ स्वपुरं प्रति ।

इसके बाद लक्ष्मण तथा सुग्रीव आदिके साथ श्रीरामचन्द्रजी जिस मार्गसे आये थे, उसीके द्वारा अपनी राजधानी अयोध्याकी ओर प्रस्थित हुए ॥ ५९½ ॥

अयोध्यां स समासाद्य पुरीं राष्ट्रपतिस्ततः ॥ ६० ॥
भरताय हनूमन्तं दूतं प्रास्थापयत् तदा ।

तत्पश्चात् अयोध्यापुरीके निकट पहुँचकर राष्ट्रपति श्रीरामने हनुमान्‌जीको दूत बनाकर भरतके पास भेजा ॥ ६०½ ॥

लक्षयित्वेङ्गितं सर्वं प्रियं तस्मै निवेद्य वै ॥ ६१ ॥
वायुपुत्रे पुनः प्राप्ते नन्दिग्राममुपागमत् ।

जब वायुपुत्र हनुमान्‌जी भरतजीकी सारी चेष्टाओंको लक्ष्य करके उन्हें श्रीरामचन्द्रजीके पुनरागमनका प्रिय समाचार सुनाकर लौट आये, तब श्रीरामचन्द्रजी नन्दिग्राममें आये ॥ ६१½ ॥

स तत्र मलदिग्धाङ्गं भरतं चीरवाससम् ॥ ६२ ॥
अग्रतः पादुके कृत्वा ददर्शासीनमासने ।

वहाँ आकर श्रीरामने देखा, भरत चीरवस्त्र पहने हुए हैं, उनका शरीर मैलसे भरा हुआ है और वे मेरी चरण-पादुकाएँ आगे रखकर कुशासनपर बैठे हैं ॥६२½ ॥

संगतो भरतेनाथ शत्रुघ्नेन च वीर्यवान् ॥ ६३ ॥
राघवः सहसौमित्रिर्मुमुदे भरतर्षभ ।

युधिष्ठिर ! लक्ष्मणसहित पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी भरत और शत्रुघ्नसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ६३½ ॥

ततो भरतशत्रुघ्नौ समेतौ गुरुणा तदा ॥ ६४ ॥
वैदेह्या दर्शनेनोभौ प्रहर्षं समवापतुः ।

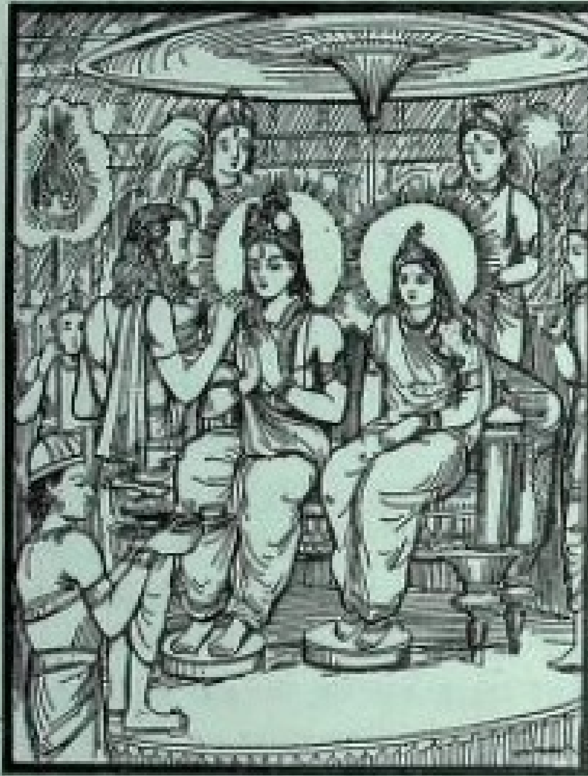
भरत और शत्रुघ्नको भी उस समय बड़े भाईसे मिलकर तथा विदेहकुमारी सीताका दर्शन करके महान् हर्ष प्राप्त हुआ ॥ ६४½ ॥

तस्मै तद् भरतो राज्यमागतायातिसत्कृतम् ।
न्यासं निर्यातयामास युक्तः परमया मुदा ॥ ६५ ॥

फिर भरतजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ अयोध्या पधारे हुए भगवान् श्रीरामको अपने पास धरोहरके रूपमें रखा हुआ (अयोध्याका) राज्य अत्युत्तम सत्कारपूर्वक लौटा दिया ॥ ६५ ॥

ततस्तं वैष्णवे शूरं नक्षत्रेऽभिमतेऽहनि ।
वसिष्ठो वामदेवश्च सहितावभ्यषिञ्चताम् ॥ ६६ ॥

तत्पश्चात् विष्णुदेवतासम्बन्धी श्रवण नक्षत्रका पुण्य



दिवस आनेपर वसिष्ठ और वामदेव दोनों ऋषियोंने मिलकर शूरशिरोमणि भगवान् रामका राज्याभिषेक किया ॥ ६६ ॥

सोऽभिषिक्तः कपिश्रेष्ठं सुग्रीवं ससुहृज्जनम् ।
विभीषणं च पौलस्त्यमन्वजानाद् गृहान् प्रति ॥ ६७ ॥

राज्याभिषेकका कार्य सम्पन्न हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने सुहृदोंसहित सुग्रीवको तथा पुलस्त्यकुलनन्दन विभीषणको अपने-अपने घर लौटनेकी आज्ञा दी ॥ ६७ ॥

अभ्यर्च्य विविधैर्भोगैः प्रीतियुक्तौ मुदा युतौ ।
समाधायेतिकर्तव्यं दुःखेन विससर्ज ह ॥ ६८ ॥

श्रीरामने भाँति-भाँतिके भोग अर्पित करके उन दोनोंका सत्कार किया । इससे वे बड़े प्रसन्न और आनन्दमग्न हो गये। तदनन्तर उन दोनोंको कर्तव्यकी शिक्षा देकर रघुनाथजीने उन्हें बड़े दुःखसे विदा किया ॥ ६८ ॥

पुष्पकं च विमानं तत् पूजयित्वा स राघवः ।
प्रादाद् वैश्रवणायैव प्रीत्या स रघुनन्दनः ॥ ६९ ॥

इसके बाद उस पुष्पकविमानकी पूजा करके रघुनन्दन श्रीरामने उसे कुबेरको ही प्रेमपूर्वक लौटा दिया ॥ ६९ ॥

ततो देवर्षिसहितः सरितं गोमतीमनु ।
दशाश्वमेधानाजह्रे जारूथ्यान् स निरर्गलान् ॥ ७० ॥

तदनन्तर देवर्षियोंसहित गोमती नदीके तटपर जाकर श्रीरघुनाथजीने दस अश्वमेध यज्ञ किये, जो स्तुतिके योग्य थे और जिनमें अन्न आदिकी इच्छासे आनेवाले याचकोंके लिये कभी द्वार बंद नहीं होता था ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि श्रीरामाभिषेके एकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें श्रीरामाभिषेकविषयक दो सौ इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥२९१॥

द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेयजीके द्वारा राजा युधिष्ठिरको आश्वासन

मार्कण्डेय उवाच

एवमेतन्महाबाहो रामेणामिततेजसा ।
प्राप्तं व्यसनमत्युग्रं वनवासकृतं पुरा ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—महाबाहु युधिष्ठिर! इस प्रकार प्राचीन कालमें अमिततेजस्वी श्रीरामने वनवासजनित अत्यन्त भयंकर कष्ट भोगा था ॥ १ ॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र क्षत्रियोऽसि परंतप ।
बाहुवीर्याश्रिते मार्गे वर्तसे दीप्तनिर्णये ॥ २ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले पुरुषसिंह! तुम क्षत्रिय हो, शोक न करो। तुम तो उस मार्गपर चल रहे हो, जहाँ केवल अपने बाहुबलका भरोसा किया जाता है तथा जहाँ अभीष्ट फलकी प्राप्ति प्रत्यक्ष एवं असंदिग्ध है ॥ २ ॥

न हि ते वृजिनं किंचिद् वर्तते परमण्वपि ।
अस्मिन् मार्गे विषीदेयुः सेन्द्रा अपि सुरासुराः॥ ३ ॥

श्रीरामके कष्टके सामने तुम्हारा कष्ट अणुमात्र भी नहीं है। इन्द्रसहित देवता तथा असुर भी इस क्षत्रियधर्मके मार्गपर चले हैं ॥ ३ ॥

संहत्य निहतो वृत्रो मरुद्भिर्वज्रपाणिना ।
नमुचिश्चैव दुर्धर्षो दीर्घजिह्वा च राक्षसी ॥ ४ ॥

वज्रपाणि इन्द्रने मरुद्गणोंके साथ मिलकर वृत्रासुर, दुर्धर्ष वीर नमुचि तथा दीर्घजिह्वा राक्षसीका वध किया था ॥

सहायवति सर्वार्थाः संतिष्ठन्तीह सर्वदा ।
किं नु तस्याजितं संख्ये यस्य भ्राता धनंजयः ॥ ५ ॥

जो सहायकोंसे सम्पन्न है, उसके सभी मनोरथ इस जगत्में सब प्रकारसे सिद्ध होते हैं। फिर जिसे धनंजय-जैसा भाई मिला हो, वह युद्धमें किसे परास्त नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

अयं च बलिनां श्रेष्ठो भीमो भीमपराक्रमः ।

युवानौ च महेष्वासौ वीरौ माद्रवतीसुतौ ॥ ६ ॥

ये भयंकर पराक्रमी भीमसेन बलवानोंमें श्रेष्ठ हैं। माद्रीनन्दन वीर नकुल-सहदेव भी महान् धनुर्धर तथा नवयुवक हैं ॥ ६ ॥

एभिः सहायैः कस्मात् त्वं विषीदसि परंतप ।
य इमे वज्रिणः सेनां जयेयुः समरुद्गणाम् ॥ ७ ॥

परंतप ! इन सब सहायकोंके होते हुए तुम विषाद क्यों करते हो ? तुम्हारे ये भाई तो मरुद्गणोंसहित वज्रधारी इन्द्रकी सेनाको भी परास्त कर सकते हैं ॥ ७ ॥

त्वमप्येभिर्महेष्वासैः सहायैर्देवरूपिभिः ।
विजेष्यसे रणे सर्वानमित्रान् भरतर्षभ ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुम भी इन देवस्वरूप महाधनुर्धर भाइयों-की सहायतासे अपने समस्त शत्रुओंको युद्धमें जीत लोगे ॥

इतश्च त्वमिमां पश्य सैन्धवेन दुरात्मना ।
बलिना वीर्यमत्तेन हृतामेभिर्महात्मभिः ॥ ९ ॥
आनीतां द्रौपदीं कृष्णां कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
जयद्रथं च राजानं विजितं वशमागतम् ॥ १० ॥

इधर इस द्रौपदीकी ओर देखो । अपने पराक्रमके मदसे उन्मत्त महाबली दुरात्मा सिन्धुराजने इसे हर लिया था; परंतु तुम्हारे इन महात्मा बन्धुओंने अत्यन्त दुष्कर कर्म करके द्रुपदकुमारी कृष्णाको पुनः लौटा लिया तथा राजा जयद्रथको भी परास्त करके अपने अधीन कर लिया था ॥

असहायेन रामेण वैदेही पुनराहृता ।
हत्वा संख्ये दशग्रीवं राक्षसं भीमविक्रमम् ॥ ११ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके तो कोई सजातीय सहायक भी नहीं थे, तो भी उन्होंने युद्धमें भयंकर पराक्रमी राक्षस दशाननका वध करके विदेहनन्दिनी सीताको पुनः लौटा लिया ॥ ११ ॥

यस्य शाखामृगा मित्राण्यृक्षाः कालमुखास्तथा ।
जात्यन्तरगता राजन्नेतद् बुद्ध्यानुचिन्तय ॥ १२ ॥

राजन् ! दूसरी योनिके प्राणी वानर, लंगूर तथा रीछ ही उनके मित्र अथवा सहायक थे (किंतु तुम्हारे तो चार शूरवीर भाई सहायक हैं) । इस बातपर बुद्धिद्वारा विचार करो ॥ १२ ॥

तस्मात् त्वं कुरुश्रेष्ठ मा शुचो भरतर्षभ ।
त्वद्विधा हि महात्मानो न शोचन्ति परंतप ॥ १३ ॥

अतः कुरुश्रेष्ठ ! भरतभूषण ! तुम शोक न करो । क्योंकि परंतप ! तुम्हारे-जैसे महात्मा पुरुष कभी शोक नहीं करते ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाश्वासितो राजा मार्कण्डेयेन धीमता ।
त्यक्त्वा दुःखमदीनात्मा पुनरप्येनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! परम बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस प्रकार आश्वासन देनेपर उदार हृदयवाले राजा युधिष्ठिर दुःख-शोक छोड़कर पुनः उनसे इस प्रकार बोले ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि युधिष्ठिराश्वासने द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत वनपर्वके अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्वमें युधिष्ठिरको आश्वासनविषयक दो सौ बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९२ ॥

(पतिव्रतामाहात्म्यपर्व)

त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजा अश्वपतिको देवी सावित्रीके वरदानसे सावित्री नामक कन्याकी प्राप्ति तथा सावित्रीका पतिवरणके लिये विभिन्न देशोंमें भ्रमण

युधिष्ठिर उवाच

नात्मानमनुशोचामि नेमान् भ्रातॄन् महामुने ।
हरणं चापि राज्यस्य यथेमां द्रुपदात्मजाम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—महामुने ! इस द्रुपदकुमारीके लिये मुझे जैसा शोक होता है, वैसा न तो अपने लिये, न इन भाइयों-के लिये और न राज्य छिन जानेके लिये ही होता है ॥ १ ॥

द्यूते दुरात्मभिः क्लिष्टाः कृष्णया तारिता वयम् ।
जयद्रथेन च पुनर्वनाच्चापि हृता बलात् ॥ २ ॥

दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्रोंने जूएके समय हमलोगोंको भारी संकटमें डाल दिया था, परंतु इस द्रौपदीने हमें बचा लिया । फिर जयद्रथने इस वनसे इसका बलपूर्वक अपहरण किया ॥ २ ॥

अस्ति सीमन्तिनी काचिद् दृष्टपूर्वाथवा श्रुता ।
पतिव्रता महाभागा यथेयं द्रुपदात्मजा ॥ ३ ॥

क्या आपने किसी ऐसी परम सौभाग्यवती पतिव्रता नारी-को पहले कभी देखा अथवा सुना है, जैसी यह द्रौपदी है ? ॥ ३ ॥